http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग 2

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

सहजानन्द शास्त्रमाला

सर्वाधिकार सुरक्षित

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[१, २, ३, ४ भाग]

प्रवक्ता :
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

सम्पादक :
पं० देवचन्द जैन शास्त्री, सहारनपुर

प्रबन्ध-सम्पादक :
बैजनाथ जैन, सदस्य स० शा०
यादगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :
मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

मुद्रक :
साहित्य प्रिंटिंग प्रेस, बाजार दीनानाथ, सहारनपुर

१९६८]

[न्योछावर ४ रु०

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्र-प्रवचन

[द्वितीय भाग]

हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् ॥ २ ॥

ज्ञानमें प्रामाण्यका समर्थन—हित और अहितकी प्राप्ति तथा परिहार करनेमें समर्थ प्रमाण हुआ करता है और चूंकि हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करानेमें समर्थ ज्ञान ही है इस कारण ज्ञान ही प्रमाण है। इस सिद्धान्तको दार्शनिक पद्धतिके वचनोंमें कहा जाय तो यों कहना चाहिए कि ज्ञान ही प्रमाण है, क्योंकि हितकी प्राप्ति और अहितके परिहार करनेमें ज्ञान ही समर्थ है। जहां युक्ति सहित वचन बोले जाते हैं वह दार्शनिक पद्धति बन जाती है। यह एक अनुमान प्रमाणका भी रूप बन गया, ज्ञान प्रमाण है हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करनेमें समर्थ होनेसे। हित मायने सुख है और सुखके साधन हैं। अहित मायने दुःख है और दुःखके साधन हैं। सुखको भी हित कहते हैं और सुखके साधनको भी हित कहते हैं, दुःखको भी अहित कहते हैं और दुःखके साधनको भी अहित कहते हैं। तो ऐसे हितकी प्राप्तिमें और अहितके परिहारमें समर्थ ज्ञान होता है। ज्ञानसे ही जानकर यह बोध होता है कि यह हितरूप है और यह अहितरूप है। तो ज्ञानने हितकी प्राप्ति करायी और अहितका परिहार कराया।

प्रमाणके प्रसंगमें प्राप्तिका अर्थ—यहां प्राप्तिका अर्थ उपादेयभूत कियाका साधने वाला अर्थप्रकाश लेना है। अर्थात् पदार्थका बोध हो जानेका नाम प्राप्ति है। जो हम करना चाहते हैं, जो अर्थक्रिया हमें इष्ट है उसके साधनेवाला जो पदार्थ है उस पदार्थका ज्ञान हो जाना यही यहां प्राप्ति है। अर्थक्रिया चाहने वाला पुरुष उस काम के निष्पादनमें समर्थ जो वस्तु है उसकी प्राप्तिकी इच्छा करता है और उसके प्रदर्शन की खोज करता है। जैसे किसीको प्यास लगी है तो क्या चाहता है वह? पीना चाहता है। अर्थ क्रिया है पीना। उस पीनेकी क्रियाका साधक है जल। उस जलकी मालूमात हो जाना कि यह जल है, यही ज्ञानने हितकी प्राप्ति करायी। यहां प्राप्तिका अर्थ जलके निकट पहुंचना, जलको ग्रहण कर लेना नहीं है बल्कि अभिमुखोपस्थित जल पदार्थमें जलका बोध होना है। यही प्राप्ति है क्योंकि ज्ञानके द्वारा प्रदर्शित अर्थ में ही तो प्राप्ति होती है। ज्ञानके द्वारा जो बात ज्ञात हुई उसमें हितकी प्राप्तिका अभाव नहीं है। जो इष्ट था वह तुरन्त मिल गया। देखिये जिसको प्यास लगी है और पानी चाहता है पीनेके लिये तो उस समय उसको इष्ट यही है कि जल कहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दिख जाय। जल मिल जाय यह भी भावमें भरा है पर साक्षात् उसकी क्या आकांक्षा है ? जल दिख जाय। तो उसका इष्टभाव जलका दिख जाना है, और वह दिख गया बस यही हितकी प्राप्ति है। जल मिल जाय इस भावनामें इच्छाकी प्रधानता है और जल दिख जाय इस आकांक्षामें प्रमाण अर्थात् ज्ञानके अन्वेषणकी प्रधानता है। यद्यपि जलका देख लेना केवल देख लेनेके लिये नहीं चाह रहा है, पीनेके लिये चाह रहा है मगर पीनेका काम जो वह करेगा भावीकालमें उससे पहिले जल देखनेकी उसकी आकांक्षा तेज है। तो पदार्थके प्रदर्शकत्वमें हितकी प्राप्ति साक्षात् है।

ज्ञानकी हित प्राप्ति समर्थताके सम्बन्धमें एक प्रश्नोत्तर—इस प्रसंगमें क्षणिकवाद सिद्धान्तमें कुछ आपत्ति उठा सकता है। क्षणिकवाद ज्ञानको क्षणस्थायी मानता है। क्षण क्षणमें नये नये ज्ञान बनते हैं। जो ज्ञान उत्पन्न हुआ वह उस ही क्षण रहा और तुरन्त नष्ट हो जाता है। तो क्षणिकवाद यहां प्रश्न कर रहा है कि ज्ञान तो क्षणिक होता है। अर्थकी प्राप्ति जब होगी उससे पहिले ही यह ज्ञान नष्ट हो जाता है फिर इस ज्ञानको प्राप्ति कराने वाला कैसे कहा जाय ? उत्तरमें सामान्यतया यह समाधान दे रहे हैं कि प्राप्तिका अर्थ केवल प्रदर्शकपना है। पदार्थकी जानकारी हो गयी यही प्राप्तिका अर्थ है। प्रदर्शकत्वके सिवाय अन्य कुछ क्रिया हो, प्रवृत्ति हो, पानी पी लेवे, उस कार्यको कर लेवे ऐसी बात यहां प्रमाणमें नहीं कही जा रही है पानीको पी लेना प्रमाण नहीं है किन्तु पानीको यह पानी है ऐसा ज्ञान हो जाना प्रमाण है।

प्रकृतज्ञानकी उसी ज्ञानसे हितप्रापकता—क्षणिकवाद फिर यह कह रहा है कि तुम घबड़ावो मत। हम ज्ञानकी प्रापकता सिद्ध किये देते हैं। उस ज्ञान के बाद जो नया ज्ञान पैदा होगा तो चूंकि पूर्वज्ञानका नवीन ज्ञानसे सम्बन्ध है, संतान है, उसका लगातारपना चल रहा है इस कारण वह ज्ञानान्तर अर्थकी प्राप्तिमें साधन बन जायगा, तो प्रापक भी बन गया। हम उस प्रापकतामें विरोध देखकर प्रदर्शकपने मात्रसे प्राप्ति न मानें। प्रापक भी हो जायगा क्योंकि ज्ञानके बाद ज्ञान अनेक उत्पन्न होते रहते हैं। तो अन्य ज्ञानने प्राप्ति करा दी, और वे सब ज्ञानके सिलसिलेसे ही आये हुए हैं, इसलिये ज्ञानान्तरसे अर्थप्राप्ति बन जायगी। आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसी आशंका और समाधानका भाव न रखिये। यद्यपि अनेक ज्ञान क्षणोंके व्यतीत होनेसे पदार्थकी प्राप्ति हो जायगी किन्तु पदार्थको छू लेना पा लेना इसका प्रयोग कर लेना यहां यह प्राप्तिका अर्थ है ही नहीं प्राप्तिका अर्थ तो पदार्थका प्रदर्शन हो जाना पहिले ही ज्ञानमें सम्भव है। अन्य अन्य ज्ञानोंकी जरूरत नहीं है। हां उस ज्ञानके बाद जो नये नये और ज्ञान उत्पन्न होते हैं वे और विशेष विशेष अंशोंके जनाने वाले होते हैं।

प्रवृत्ति और प्रमाणका जुदा जुदा स्वरूप—जिस चीजको हमें ग्रहण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करना है उसकी प्राप्ति तो हमारे क्रिया सध्य है, प्रमाणके आधीन नहीं है। वह तो पुरुषकी इच्छा हो और उसके आधीन प्रवृत्ति हो उससे पदार्थकी प्राप्ति होती है। पदार्थको ग्रहण कर लेनेका नाम प्रमाण नहीं कह रहे किन्तु पदार्थका बोध हो जाने का नाम प्रमाण है। न भी प्रवृत्ति हो तो भी प्रमाणका काम तो पदार्थका यथार्थ प्रकाश करा देना है। वह तो है ही, सबके अनुभवमें आता है। यदि पदार्थकी प्राप्तिका ही नाम प्रमाण बन जाय तो यहींसे बैठे-बैठे हम चन्द्रमाको देखते हैं, चन्द्रमाका जो ज्ञान हुआ वह प्रमाण है या नही ? प्रवृत्ति तो हुई नहीं, हम चन्द्रमाको पकड़ तो नहीं सकते, फिर पदार्थोंके अभावमें भी चन्द्रज्ञान प्रमाणरूप है या नहीं ? चन्द्रज्ञान प्रमाण है, सभीकी प्रतीतिमें ऐसी बात आती है, तो यथार्थ बोध हो जानेका नाम प्रमाण है, परिणतिका नाम प्रमाण नहीं हैं। पदार्थ मिल जाय, पदार्थका भोग कर लिया जाय, जिस उपयोगमें पदार्थको लगाते हैं उसका उपयोग बना लिया जाय तब प्रमाण कहलाये ऐसी बात नहीं है।

प्रवृत्तिकी नानासाधन प्रभावता और प्रमाणकी अर्थप्रदर्शकता—तुम प्रवृत्ति कर सको या न कर सको, उस पदार्थका उपयोग कर सको या न कर सको यह तुम्हारे प्रयत्न इच्छा शक्ति सबके आधीन बात है, किन्तु पदार्थ जिस स्वरूपसे है उस स्वरूपसे प्रकाश हो जाना और उसमें जो हम चाहते हैं उसका पंथ मिल जाना, जो हम नहीं चाहते हैं उसके दूर होनेका मार्ग मिल जाना इसीके मायने हितकी प्राप्ति है। सूर्योदय होता है, प्रकाश हो गया, उस प्रकाशमें सबकी बुद्धि व्यवस्थित हो जाती है। जो जैसी चीज है उसका उस प्रकारसे देखना बन जाता है। अब सूर्यका काम तो मात्र दिखा देना है और उसका दृढ़तासे निर्णय करा देना है। निमित्त दृष्टिसे कह रहे हैं, पर यह काम नहीं है कि आपको जिस जगह आज जाना है सूर्य आपको ढकेलकर उस जगह पहुंचा दे यह तो आपकी इच्छा प्रवृत्ति, शक्ति, साधन इनके ताल्लुक बात है। प्रमाण कार्य केवल पदार्थका प्रकाश करा देने वाला है और वह होती है ज्ञानमें ही बात। हितकी प्राप्ति और अहितके परिहारमें समर्थ केवल ज्ञानस्वरूप है, अन्य अचेतन पदार्थ नहीं है इस कारण ज्ञान ही प्रमाण है।

ज्ञानकी हितप्राप्तिसमर्थताका समर्थन— प्रमाणका स्वरूप पहिले सूत्रमें कहा गया था। स्व और अपूर्व अर्थका व्यवसायात्मक जो ज्ञान है वह प्रमाण है। तो प्रमाण शब्दका तो खूब विवेचन किया गया था। इस सूत्रमें ज्ञानका विवेचन किया जा रहा है कि ज्ञान ही प्रमाण है। अज्ञान क्यों नहीं प्रमाण बनता ? अज्ञानमें हितकी प्राप्ति करा देना और अहितका परित्याग करा देना यह सामर्थ्य नहीं है। जानकर ही तो हम हितकार्यको करते हैं और अहितकार्यको छोड़ते हैं। और, एक दृष्टिसे देखो तो जाननेमें ही हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार हो जाता है। लौकिक बातोंमें तो थोड़ा समयभेद मालूम होता है। जाना हमने अभी और हितकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्राप्ति करेंगे थोड़ी देरमें, लेकिन परमार्थसे, अध्यात्मदृष्टिसे ज्ञानके ही कालमें हितकी प्राप्ति होती है और अहितका परिहार होता है। जैसे अन्तर्ज्ञान होता है यह आत्मा मात्र ज्ञान ज्योतिस्वरूप है, ऐसा उपयोग गया, ऐसी ही मान्यता बनी, ऐसा ही अनुभव जगा तो उस कालमें हितरूप जो आत्मतत्त्व है उसकी प्राप्ति हो गयी। कहीं आत्मतत्त्वको पानेके लिए दौड़ नहीं लगानी पड़ती, कोई क्रिया नहीं करनी पड़ती, क्रिया रंच नहीं होती हलन चलन रंच नहीं होती। उस ही क्षेत्रमें निश्चल होकर ज्ञान किया जाता है अन्तस्तत्त्वका। तो जिस क्षणमें जान लिया कि यह मैं आत्मा ज्ञानस्वभावमात्र हूँ तो ज्ञान ही इसका स्वरूप है, ज्ञान ही इसका सर्वस्व है, सो उस ज्ञानने जब जब कषायोंको त्याग दिया अर्थात् कषायोंका ग्रहण न किया, कषायको पररूप जानकर ज्ञानने त्याग दिया, यद्यपि आत्मक्षेत्रसे कषायें हटी भी नहीं हों, लेकिन ज्ञानने तो कषायको छोड़ दिया और अन्तः आत्मस्वरूपका ज्ञानने ग्रहण किया तो उस ज्ञानमें तो तत्काल हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार बन गया।

ज्ञानका सत्वर व समर्थ उपकार—प्रश्न—जानना, मानना, अनुभव करना ये तो क्रमसे ही हो पावेंगे? उत्तर—जिसका ज्ञान दृढ़ नहीं है उसे अपने ज्ञानको दृढ़ करनेके लिए उसकी अवस्थाएँ तो ये क्रमसे बन जायेंगी, किन्तु जो अभ्यस्त पुरुष है उसे जानना, मानना, प्रतीति करना, अनुभव करना ये सब एक साथ हो जाते हैं। भैया! शुद्ध तत्त्वके ज्ञानके सिवाय हमारा न कोई रक्षक है, न शरण है, न कोई प्रभु है। हमारा ही निर्मल उपयोग बने, विशुद्ध ज्ञान बने इससे ही हमारी रक्षा है, अन्य कोई हमारी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है। कुटुम्ब मित्र परिजन कितना ही कोई चाहे और हममें उस प्रकारका परिणमन बने तो कोई हमारा क्या कर सकता है। और जब हमारा उस रूप परिणमन बने तब भी कोई दूसरा हमारा कुछ नहीं कर रहा। शान्तिके लिए भरसक प्रयत्न लोग करते हैं, शरीरका श्रम करना, वचनका श्रम उठाना, मानसिक विकल्प चलाते रहना अनेक प्रकारके श्रम किए जाते हैं किन्तु श्रमरहित अन्तःस्वरूपके ज्ञानका प्रयास यह जीव नहीं करता, मोहमें इस प्रकारकी बुद्धि नहीं जगती कि मैं अपने शान्त स्वरूप अकल्मष अन्तस्तत्त्वके निकट बसा रहूँ और सर्व संकटोंको दूर करलूँ। मोहमें मोह करनेकी ही बुद्धि जगती है। तो जैसे खूनसे सने हुए कपड़ेको खूनसे ही धोये तो वह दाग धुलता नहीं है इसी प्रकार मोहसे उत्पन्न हुए दुःखको मिटानेके लिये मोहका ही उपाय किया जाय तो वह दुःख मिटता नहीं है। एक अन्तर्ज्ञानमें ही ऐसी सामर्थ्य है कि एक साथ ही समस्त संकटोंमें यह दूर कर सकता है।

आत्मविश्वासका अनुरोध—भैया! और अधिक नहीं तो जैसे जिस लकड़हारेपर बोझ ज्यादा लदा है वह बोझ लादे भी जाता है और बीच बीचमें किसी वृक्ष के सहारे गट्ठेको टिकाकर कुछ विश्रामका भी अनुभव करता जाता है, विश्राम लेना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है। तो बोझ भी ढोना पड़े तो बीच बीचमें विश्राम लेते रहना चाहिए ना तभी हम अपने प्रयोजनको आसानीसे सिद्ध कर लेंगे, तो इसी प्रकार विकल्पोंके संकट बहुत लदे हैं और उनके भारसे मरे जा रहे हैं तो कभी कभी तो विकल्पोंका संकट हटाकर विकल्पोंका भार हठाकर बाह्यकी ओर टिकाकर कुछ अपनेको निर्विकल्प ज्ञान ज्योति स्वरूप मानकर विश्राम भी तो लेते रहना चाहिए। अनवरत विकल्प कर करके कौन सी सिद्धि पा लोगे ? विकल्प यदि नहीं मिटते हैं तो बीच बीच थोड़ा निर्विकल्प अपने स्वरूपका दर्शन अनुभव तो करते रहना चाहिए लगातार सारी जिन्दगी ही विकल्प विकल्पमें खोई जाय तो उससे कौनसी सिद्धि पा लोगे ? बहुत देर तक भी यदि अन्तर्ज्ञानकी बात नहीं निभती तो अमृत बिन्दु मात्र भी मिले तो वह भी सुखका साधन बनता है इसी प्रकार अन्तस्तत्त्वका यह दर्शन क्षणमात्रको भी मिले तो भी यह शान्तिका साधक है।

अर्थप्रदर्शकत्वसे ही प्रामाण्यका सन्बन्ध—ज्ञान ही हितकी प्राप्तिमें और अहितके परिहारमें समर्थ है। पदार्थको हाथसे पा लेना इसका नाम प्रापक नहीं बताया किन्तु पदार्थका सही ज्ञान हो जाय, जिसमें हितके मार्गकी दृष्टि और अहितके परिहार के उपायकी दृष्टि एकदम स्पष्ट हो जाय वही ज्ञान हितका प्रापक प्रमाण है। यदि प्रवृत्तिको ही प्रमाण कहते हो। क्षणिकवादीसे पूछा जा रहा है, तो क्षणिकवादके प्रभुका ज्ञान प्रमाण है या नहीं, बतावो ? प्रमाण तो तब मानें, जब हेय और उपादेय पदार्थमें प्रवृत्ति पहुंचे। तो प्रभुका ज्ञान क्या प्रवृत्ति भी करता है ? यदि प्रवृत्ति करता है प्रभु तो वह कृतार्थ नहीं रहा। उसे कुछ काम करनेको पड़ा है। कृतकृत्य नहीं हुआ तो वह प्रभु कैसा ? तो क्षणिकवादियोंने सुगत ज्ञानको कृतार्थ माना है, प्रवृत्ति करने वाला नहीं माना फिर प्रवृत्तिके अभावमें प्रमाण कहाँ रहेगा। यदि प्रभुके ज्ञानको प्रवृत्ति करने वाला मानते हो तो जरा सोचो तो सही जैसे अन्य लोग आने जाने आदिकी प्रवृत्ति करते हैं वैसी ही प्रवृत्ति प्रभु करे तो फिर वह प्रभु कहाँ रहा ? तो इससे यह सिद्ध है कि पदार्थकी प्रवृत्ति प्रमाण नहीं है, किन्तु हितकारी वस्तुके अवगम का नाम प्रमाण है। जो अहितको छुड़ा सके और हितको ग्रहण करा सके वह प्रमाण है। अच्छा यह बतावो कि जब आत्माको सुख आदिकका सम्बोधन होता है तो उस समय कुछ प्रवृत्तिकी जाती है क्या ? जब आत्मा अपने आपमें आनन्दरूप अनुभव करता है उस समय उसका ज्ञान प्रमाण है या नहीं, प्रवृत्ति तो कुछ नहीं कर रहा ? प्रमाण है, इसलिये क्रिया होनेसे प्रमाण हुआ यह अर्थ न लगाना किन्तु पदार्थके यथार्थ ज्ञान होनेका नाम प्रमाण है।

ज्ञप्तिमें प्रवृत्तिका अभाव—प्रश्न ज्ञान ज्ञानमें मग्न होने जाता है तो वहाँ प्रवृत्ति तो हुई ? उत्तर प्रवृत्तिका अर्थ लिया गया है बाह्य क्रियावोंका ग्रहण करना पकड़ना, निकट पहुँचना और जो भी हम काम करना चाहते हैं उस कामको कर लें।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानमें मग्न होना यह तो ज्ञानकी बात है। ज्ञानमें ज्ञान मग्न हो गया तो क्या क्रिया प्रवृत्तिकी गई? ज्ञान ही तो क्रिया। एक यह भाषा है ऐसी कि ज्ञान ज्ञानमें चला गया। चला क्या गया? प्रकाश ही हुआ। तो ज्ञानका नाम प्रमाण है। और भी देखिये जब हम किसी अनुमान ज्ञानको करते हैं तो व्याप्तिका ज्ञान करते हैं। तर्क उठाते हैं। जैसे जहां अग्नि न हो वहां धुवां नहीं होता इस प्रकारका जो ज्ञान किया वह प्रमाण है वहां कहीं प्रवृत्तिकी क्या? प्रवृत्ति कुछ नहींकी। तो प्रवृत्तिके अभावमें भी प्रवृत्तिके विषयभूत पदार्थका प्रकाश कर लेना इसका नाम प्रमाण है। यही ज्ञान है, यही ज्ञानकी प्रमाणता है। ज्ञान ही प्रमाण है, अज्ञान प्रमाण नहीं है।

अर्थप्रदर्शकत्वमें प्रामाण्य किसी भी पदार्थकी यथार्थ जानकारी हो जाना प्रमाण है, इस सम्बन्धमें यह चर्चा चल रही थी कि हितकी प्राप्तिमें समर्थ होता है प्रमाण। जब हितमें प्रवृत्ति लग जाय तो प्रमाण मानना चाहिए; केवल पदार्थके ज्ञानका नाम प्रमाण न मानना चाहिए; इस विषयमें यह उत्तर दिया है कि प्रमाण तो जानकारीका ही नाम है। रही आगेकी प्रवृत्ति, जैसे प्यास लगी है तो कहीं जल दिख गया और यह जान लिया कि यह जल है तो यह ज्ञान प्रमाण बन गया। अब उसके पास जायेगा और लोटेसे भरेगा पीवेगा यह बादकी चीज है। प्रवृत्तिका सम्बन्ध इच्छा साधन, प्रयत्न, इनसे है पर प्रमाणका सम्बन्ध तो यथार्थ जानकारीसे है। प्रवृत्ति जिस विषयमें करना है, जिस अर्थका प्रयोग करना है उस पदार्थका उपदर्शन हो जाना, जानकारी हो जाना इसीसे ही ज्ञानमें प्रमाणता मानी जाती है प्रवृत्तिसे नहीं।

प्रवृत्तिके विषयभूत पदार्थमें शङ्काकारके विकल्प—प्रवृत्ति प्रमाण नहीं, ज्ञान प्रमाण है, इस बातको सुनकर शङ्काकार अब यह कहता है कि चलो प्रवृत्ति प्रमाणका कारण न सही, प्रमाणका कारण ज्ञान सही, पर वह ज्ञान प्रवृत्तिके विषयभूत अर्थका ही तो है। जो पिया जायगा उसका ही तो ज्ञान किया जा रहा है। तो प्रवृत्तिका विषयभूत पदार्थ भावीकालका है या वर्तमानकालका? अर्थात् प्रवृत्ति तो भावीकालमें होगी, आगे होगी। उसका विषयभूत जो पदार्थ है वह भी भावी है क्या? अर्थात् भविष्यकालका है या वर्तमानमालका है? यदि कहो कि प्रवृत्तिका विषयभूत पदार्थ भावीकालका है तो उसकी प्रत्यक्षसे जानकारी तो होनी न चाहिए, क्योंकि वह भविष्यकी चीज है और भविष्यमें इस प्रत्यक्षकी गति नहीं है। यदि कहो कि प्रवृत्तिका विषयभूत पदार्थ भावी नहीं अर्थात् दृष्टान्तमें जैसे कि जो पिया जायगा ऐसा पानी भावी नहीं है, किन्तु वर्तमान है तो प्रवृत्तिका विषयभूत यदि वर्तमान पदार्थ है तो यह भी युक्त नहीं। वर्तमान पदार्थमें किसी भी अभिलाषीकी प्राप्तिकी प्रवृत्ति नहीं होती वह तो वर्तमान ही है, जब भावीकालमें होगा उसकी प्राप्तिके लिये प्रवृत्ति है, वर्तमानकी क्या प्रवृत्ति? जो भोजन करते समय कौर उठानेकी प्रवृत्ति की तो वह मुँहमें नहीं हैं तभी तो वर्तमान उपभोगमें आने योग्य पदार्थकी प्राप्तिकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रवृत्ति की। उसका यदि अनुभव होता तो उस वर्तमानमें किसीकी प्रवृत्ति ही न होती। कोई भी पुरुष जो अनुभवमें आ रहा उसके ही लिये तो प्रवृत्ति करेगा, अनुभवमें आ रहेकी प्रवृत्ति क्या ?

ज्ञानकी प्रवृत्त्यर्थता व अर्थप्रदर्शकत्वके कारण प्रमाणता—शङ्काकारने प्रश्न रखा, प्रमाणका विषयभूत अर्थज्ञान सिद्ध नहीं हो सकता, इसके लिए ये दो प्रमाण रखे कि प्रवृत्तिका विषयभूत पदार्थ भावी है या वर्तमान ? भावी है तो उसका ज्ञान नहीं हो सकता। वर्तमान है तो उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। उत्तर दे रहे हैं कि अर्थक्रियामें समर्थ जो पदार्थ है वह और और अर्थक्रिया ये प्रवृत्तिके विषयभूत हैं। अर्थक्रिया प्रमाणका विषय नहीं है किन्तु अर्थक्रियाका जो विषयभूत पदार्थ है, जैसे पानी पीना है तो उसका विषयभूत है पानी, सो पानीका जो ज्ञान है वह प्रमाण है। पानी कोई पी सके चाहे न पी सके लेकिन अर्थज्ञान तो प्रमाण हो ही जाता है। अर्थक्रिया जरूर भविष्यमें है पर अर्थक्रियाका विषयभूत जो पदार्थ है वह तो वर्तमानमें स्पष्ट है इसलिए पदार्थका ज्ञान हो जाना ही प्रमाण है पदार्थ अगर प्रत्यक्षमें आ गया है, ज्ञान हो गया है तो वह ज्ञान तो प्रवृत्तिके लिये है। जिसमें हमारा हित है और जिसमें हमारा हित दूर होता है ऐसे पदार्थकी जानकारी हो जाना ही प्रमाण है।

ज्ञानकी प्राप्तिमें हित प्राप्ति व अहितका परिहार—मिथ्यादृष्टि भी किसी अहितकारी पदार्थसे भी रुचि रखता है, लेकिन उसकी दृष्टिमें वह अहितकारी नहीं है। जितने भी ज्ञान जिसके होते हैं जानने वालेके ज्ञानमें उस समय उसमें हित माना जा रहा है और अहितका परिहार माना जा रहा है। चाहे उसका फल कैसा ही हो। ज्ञानकी प्रकृति ही ऐसी है कि उसमें हितप्राप्ति और अहितका परिहार होता है। कोई मिथ्यात्व आशयसे कलुषित हो और कुछसे कुछ माने तो ज्ञानियोंकी दृष्टिसे तो अप्रमाण है, किन्तु उसकी दृष्टिमें तो प्रमाण ही है।

प्रमाणताकी व्यवस्था—इस सम्बन्धमें एक बात और समझनेकी है कि प्रमाण और अप्रमाणकी व्यवस्था बाह्य पदार्थोंकी दृष्टिसे है, भीतरी ज्ञानकी दृष्टिसे नहीं है। अर्थात् अगर अन्तरङ्ग ज्ञेयाकारकी दृष्टिसे प्रमाणकी व्यवस्था की जाय तो अप्रमाण कुछ है ही नहीं। जो जान रहा है वह अपनी जानकारीमें अपने विकल्पसे सही जान रहा है। उसकी दृष्टिमें अप्रमाण कुछ नहीं है, पर जैसे यहां ज्ञेयाकार झलक रहा है इसी प्रकार पदार्थ भी है या नहीं है उसके अनुकूल पदार्थ भी मालूम पड़े तो प्रमाण है और न मालूम पड़े तो अप्रमाण है। जैसे सीपको चांदी जिसने समझ लिया उसकी दृष्टिमें तो वह प्रमाण है। वह तो जान रहा है कि चांदी है किन्तु जैसा जाना गया है वैसा वह पदार्थ नहीं है इस कारण वह अप्रमाणकी व्यवस्था अन्तरङ्ग ज्ञेयाकारके कारण नहीं है किन्तु जैसा जाना है वैसा पदार्थ हो तो प्रमाण है और नहीं है तो अप्रमाण है। इस दृष्टिसे जरा प्रभुके केवल एक ज्ञानको तो देखिये केवल ज्ञानको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न प्रमाण कह सकते न अप्रमाण कह सकते। हां हम यहां प्रमाण और अप्रमाणकी चर्चा कह रहे हैं इस कारण हम उसे प्रमाण कहते हैं, पर वहां कभी अप्रमाण कुछ होता ही नहीं है। जिस ज्ञानमें कभी अप्रमाण होनेकी सम्भावना हो और फिर प्रमाण करता जाय तो प्रमाणकी बात सिद्धकी जाती है। जहां केवल एक अन्तरङ्ग ज्ञान-प्रकाश ही झलक रहा है और सदा एकसा ही उसमें प्रमाण है उसमें प्रमाण और अप्रमाणकी क्या खोजकी जाय ?

प्रवृत्ति हुए बिना प्रवृत्तिमें समर्थ अर्थके अवगमपर प्रश्न— यथार्थ ज्ञान कारी होना ही प्रमाण है और वह जानकारी प्रवृत्तिके लिए होती है इसलिये प्रवृत्ति चाहे कभी भी हो अथवा न भी हो किन्तु पदार्थका जो यथार्थ प्रकाश हो गया है, अर्थक्रियामें समर्थका यथार्थ प्रतिभास हुआ है उस ज्ञानका नाम प्रमाण है। यहां एक प्रश्न और रखा जा रहा है कि जब कार्य न देखा जा सका तो हम यह कैसे कह सकते हैं कि यह पदार्थ उस कार्यमें समर्थ है ? फिर हम प्रमाण कैसे मानें और प्रवृत्ति कैसे करें ? जैसे जलका ज्ञान करके वह जल ग्रहण करनेकी प्रवृत्ति करेगा तो शंकाकार यह कहता है कि जल ग्रहणकी प्रवृत्ति करेगा यह तो आप कहते हो मगर वह कार्य अभी तो नहीं दिख रहा। तो जब कार्य नहीं दिख रहा तो तुम यह कैसे निर्णय कर लोगे कि यह जल प्यास बुझानेमें समर्थ है ? प्रश्नकार कुछ भी प्रश्न कर सकता है, उसको तो खण्डनकी दृष्टि है कि इनकी बात मण्डित न हो इस प्रकरणमें यह कहा जा रहा कि जैसे जलका ज्ञान हुआ तो जल ज्ञानमें यह सब ज्ञान बसा हुआ है, इससे प्यास बुझेगी, मैं प्यास बुझाऊँगा यों प्रवृत्ति करूँगा। तो प्रवृत्तिका विषयभूत है वह पदार्थ। प्रश्नकार यह कह रहा है कि प्रवृत्ति तो वर्तमानमें तो है नहीं पीना जल ग्रहण करना यह वर्तमानमें तो है नहीं। तो जब वर्तमानमें कार्य नहीं देखा जा रहा है तो यह ज्ञान कैसे हो सके सही कि यह प्यास बुझानेमें समर्थ है ?

अर्थकी अर्थक्रियासमर्थताकी प्रतीति— उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी बातका क्या प्रश्न करना, यह तो मनुष्यको क्या पशुवों तकको भी प्रत्यय है। जैसे ही उन्हें दीखा कि यह जल है तो उसी ओर पशु चल देते हैं। तो ज्ञान होनेके साथ ही उन्हें यह विश्वास है कि यह पानी है और यह प्यास बुझानेमें समर्थ है। फिर अनुभव से, स्मरणसे, युक्तियोंसे अनेक ढङ्गसे सिद्ध होता है कि यह पदार्थ अमुक प्रयोगमें आया करता है। तो अर्थका परिज्ञान होनेपर पशुवोंकी भी उसमें प्रवृत्ति चलती है। उन तकको भी स्पष्ट बोध है और फिर यह तो सब लोग जान ही रहे कि जबरदस्ती का प्रश्न किया जा रहा है समझते हुए भी।

ज्ञानकी हितप्रापकता— जो प्रवृत्तिका विषयभूत पदार्थ है उस पदार्थका ज्ञान हो जाना इसका नाम प्रमाण है और अर्थक्रिया करनेमें समर्थ जो पदार्थ है उस पदार्थका ज्ञान हो जाना ही हितका प्रापण है अर्थात् प्रमाण हितकी प्राप्तिमें समर्थ है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसका यह अर्थ है कि जिसमें हमारी प्रवृत्ति होनेसे हमारा हित होगा उस प्रकारका ज्ञान हो गया यह हितमें लगा देनेकी बात है और अहितका परिहार भी वही है जो हमारा इष्ट नहीं है, अनिष्ट प्रयोजन है उसका यह साधक पदार्थ है । ऐसा ज्ञान हो जानेका नाम अहितका परिहार है । इस कारण यह ज्ञानक प्रमाणका स्वरूप अबाधित है कि हितकी प्राप्तिमें और अहितके परिहारमें समर्थ और बिना व्यवधानके पदार्थके स्वरूपका प्रकाशक जो ज्ञान है वह ही प्रमाण है, अज्ञान प्रमाण नहीं है ।

अज्ञानके प्रामाण्यका निराकरण—अनेक दार्शनिक तो अज्ञानको ही प्रमाण मानते हैं । कारकसाकल्य, सन्निकर्ष, इन्द्रियवृत्ति, ज्ञातृव्यापार आदिक अनेक अज्ञानोंको ही प्रमाण मानते हैं । अज्ञान प्रमाण नहीं है क्योंकि हितकी प्राप्ति और अहितके परिहारकी सामर्थ्य अज्ञानमें नहीं बसी है । यदि अज्ञान ही हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करदे तो ज्ञानकी कल्पना व्यर्थ ही हो जायगी । फिर ज्ञान क्या चीज रही ? फिर तो जो पदार्थ चेतन नहीं है वह भी प्रमाण करता रहे, फिर जीव अजीवकी व्यवस्था ही क्या रहेगी ? अज्ञान प्रमाण नहीं है, इसमें मिथ्या ज्ञान की बात नहीं कहीं जा रही, किन्तु अचेतन स्वभाव वाला पदार्थ प्रमाण है ऐसा मानते हैं कुछ दार्शनिक । जैसे लोकव्यवहारमें कोई पूछता है कि इस घटनाका प्रमाण क्या है ? इस मकानके तुम अधिकारी हो इसका सबूत क्या है ? तो वह रुक्का, दस्तावेज या रजिस्टर्डपत्र दिखा देता है, कहता है लो यह है प्रमाण ! तो हम पूछते हैं कि ज्ञानरहित कागज, स्याही वगैरह प्रमाण हैं क्या ? उनका आश्रय करके जो ज्ञान बना वह ज्ञान प्रमाण है, लेकिन लोग ज्ञानकी बात तो छुवेंगे नहीं और कहेंगे देखो यह है प्रमाण ! तो ऐसे ही कुछ दार्शनिक कारकोंके समूहका नाम प्रमाण कहते इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्ध होनेका नाम प्रमाण कहते । इन्द्रियां टिमटिमा गयीं, नेत्र खुल गए, ऐसी इन्द्रियकी चेष्टाको प्रमाण कहो तो इस प्रकार अज्ञान प्रमाण नहीं हो सकता । जो हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करनेमें समर्थ है ऐसा ज्ञान ही प्रमाण है ।

प्रथम सूत्रमें इतने शब्द कहे गये थे कि स्व, अपूर्व अर्थ, व्यवसायात्मक, ज्ञान और प्रमाण, इनमें प्रमाण शब्दकी विवेचना तो प्रथम सूत्रमें ही कर दी और ज्ञानका समर्थन इस द्वितीय सूत्रमें किया । अब व्यवसायात्मक शब्दका निरूपण इस तृतीय सूत्रमें कर रहे हैं ।

तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत् ॥ ३ ॥

व्यवसायात्मकज्ञानकी प्रमाणताका समर्थन—वह ज्ञान अथवा प्रमाण निश्चयात्मक है क्योंकि संशय, विपर्यय और अनध्यवसायका विरोधी होनेसे अनुमानकी तरह । जैसे हम साधनको निरखकर साध्यका ज्ञान करते हैं तो वह अनुमान हमारा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रमाण है क्योंकि उसमें संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय नहीं है । इसी प्रकार जितने-जितने ज्ञान और प्रमाण हैं वे निश्चयात्मक हैं क्योंकि उनमें संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय नहीं होते हैं जो जो संशय, विपर्यय, अनध्यवसायका विरोधी ज्ञान है वह सब प्रमाण है । ऐसी जानकारी जिसमें संशय विपर्यय व अनध्यवसाय नहीं है वह निश्चयात्मक है और प्रमाण है । अनेक कोटियोंमें प्रवृत्ति करने वाला ज्ञान संशय कहलाता है । विपर्यय-पदार्थ है और भांति, मान लिया और भांति यह विपर्यय है । और, पदार्थके सम्बन्धमें कुछ भी निश्चय न होना, थोड़ा सा ज्ञान होनेके बाद उसके निर्णयकी आकांक्षा तक भी नहीं रहे वह है अनध्यवसाय ज्ञान । तो इन तीनों ज्ञानों का जो विरोधी है वह तो निश्चयात्मक ही होता है । ये तीन ज्ञान यथार्थ निश्चयात्मक नहीं हैं । तो ज्ञान प्रमाण है, निश्चयात्मक होनेसे, सम्यग्ज्ञान होनेसे, विसम्वादरहित होनेसे, निश्चयका कारण होनेसे ।

परनिरपेक्षज्ञानकी प्रमाणता—प्रमाण वह ज्ञान होता है जिसके लिये परकी अपेक्षा करना न पड़े । मेरा ज्ञान सही है या नहीं है ऐसी जानकारीके लिये यदि हमें कुछ और ज्ञान ढूँढना पड़े तो यह ज्ञान प्रमाण नहीं रहा ? वह ज्ञान प्रमाण होता है जो अपना कार्य करनेमें परसे निरपेक्ष है और वस्तुके यथार्थ स्वरूपका प्रकाश करने वाला है वही ज्ञान प्रमाण होता है । ऐसा कहनेमें क्षणिकवादियोंके द्वारा माना गया निर्विकल्प ज्ञान प्रमाणभूत नहीं है यह ध्वनित होता है ।

अव्यवसायात्मक ज्ञानकी प्रमाणताका पक्ष—पहिले ज्ञानको प्रमाण सिद्ध किया था । उसपर क्षणिकवादी खुश हो गये थे कि हम भी अज्ञानको प्रमाण नहीं मानते । ज्ञान ही प्रमाण है लेकिन वह ज्ञान निर्विकल्प हो, तब वह प्रमाण है, सविकल्प ज्ञान प्रमाण नहीं है । ज्ञान दो प्रकारके होते हैं क्षणिकवादमें । एक सविकल्प ज्ञान और एक निर्विकल्प ज्ञान । सविकल्प ज्ञानको मिथ्या माना और निर्विकल्प ज्ञानको उन्होंने सही माना, पर निर्विकल्पका अर्थ क्या ? और सविकल्पका अर्थ क्या ? सो सुनो ! उनके सिद्धान्तमें सविकल्पका अर्थ तो यह है कि पदार्थका प्रतिभास हुआ तो वह विकल्प बन गया आकार बन गया । वह तो मिथ्या है क्योंकि ये पदार्थ ही सब क्षणिक हैं । जिस समय ये पदार्थ हैं असली उस समयमें ज्ञान नहीं जगा, और जब वह पदार्थ मिट गया है तब ज्ञान बना तो ज्ञान पदार्थका आकार ग्रहण करेगा तो वह झूठा ही करेगा । जितनी भी जानकारियां हैं—यह अमुक साहब बैठे, यह चौकी है, यह जीव है, जो कुछ भी प्रतिभासमें आया वह सब सविकल्प ज्ञान है, ऐसा क्षणिकवादियोंने कहा है । और उस ज्ञानसे पहिले जिसमें कि पदार्थोंका आकार प्रतिविम्बित हुआ है उससे पहिले तो निराकार ज्ञान हुआ वह प्रमाण है ।

निर्विकल्प ज्ञानका आलोचन—अब देखिये तथ्य, निराकार निर्विकल्प ज्ञानसे तो प्रमाणकी व्यवस्था नहीं बनती । कुछ जानकारीमें आया तब तो प्रमाण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और अप्रमाण कहा जायगा। लेकिन क्षणिकवादमें जानकारी बन गयी तो अप्रमाण हो गया और उस जानकारीसे पहिले जो निर्विकल्प समयस्थितिक प्रतिभास है वह प्रमाण नहीं है इसको सुगम शब्दोंमें समझना चाहें तो यों समझिये कि जैन दर्शनमें जो दर्शनका स्वरूप माना है, दर्शन गुणका परिणमन, उसकी तरह तो है क्षणिकवादका निर्विकल्प ज्ञान और जो जैन दर्शनमें ज्ञानका स्वरूप माना है वह है उनका सविकल्प ज्ञान। स्याद्वादमें ज्ञान तो साकार होता है और दर्शन निराकार होता है। किसी भी पदार्थको जाना तो कुछ भी जाननेमें आया वहां आकार जरूर आया। और वह सविकल्प बन गया और दर्शनमें पदार्थका आकार नहीं आता किन्तु एक निर्विकल्प प्रतिभास हुआ, जिसे आत्मारूप कह सकते हैं। जब कभी दूसरा पदार्थ प्रतिभासमें नहीं है और प्रतिभास बिना जीव कभी रहता नहीं जीवका स्वरूप प्रतिभास है तो बाह्य पदार्थोंका आकार तो कुछ आया नहीं और प्रतिभास है ही तो वह प्रतिभास क्रियात्मक है, वह आत्मस्वरूप है, उसीका नाम दर्शन है, तो स्याद्वादमें जो दर्शनका स्वरूप कहा गया है उस जैसी कुछ शैली निर्विकल्प ज्ञानकी है, और पदार्थकी सही जानकारी बनना इसका जो स्वरूप है उस जैसा स्वरूप सविकल्प ज्ञानमें माना है क्षणिकवादियोंने। तो क्षणिकवादका यह कहना है कि सविकल्प ज्ञान तो अप्रमाण होता हैं और निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण होता है। स्याद्वादमें साकार ज्ञान प्रमाण है और निराकार दर्शन न तो प्रमाण है और न अप्रमाण है। दर्शनमें जो बात आयी उसे अप्रमाण तो कह नहीं सकते, क्योंकि वह तो एक बहुत ऊँचा स्व प्रतिभास है और प्रमाण भी नहीं कह सकते क्योंकि उसमें अर्थ प्रतिभास है नहीं, किन्तु क्षणिकवादी निर्विकल्प ज्ञानको तो प्रमाण कहते और सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण कहते हैं। तो निराकार प्रतिभास हुआ निर्विकल्पज्ञान और साकार प्रतिभास हुआ सविकल्पज्ञान।

व्यवसायात्मक ज्ञानकी प्रमाणताका निर्णय—व्यवहारमें हम जिसको देखना कहते हैं वह जानना हीं है, देखना नहीं है देखना निर्विकल्प है, निराकार है, दर्शन आत्मप्रतिभासरूप होता है। तो ऐसे ही निर्विकल्प प्रतिभासका नाम क्षणिकवादमें निर्विकल्पज्ञान है और पदार्थकी जानकारीका नाम सविकल्पज्ञान है। तो क्षणिकवादका कहना है कि ज्ञान तो प्रमाण है परन्तु निर्विकल्पज्ञान प्रमाण है, सविकल्पज्ञान प्रमाण नहीं है। ऐसे ही अभिप्रायका खण्डन करनेके लिए इस सूत्रका अवतरण होता है कि जो व्यवसायात्मक ज्ञान हो वह प्रमाण है, जो निश्चयात्मक ज्ञान हो वह प्रमाण है और जो अनिश्चयात्मक ज्ञान हो वह प्रमाण नहीं है। जो अनिश्चयात्मकताका विरोधी निश्चयात्मक ज्ञान है वही ज्ञान प्रमाण है।

क्षणिकवाद सिद्धान्तका मूल आशय—क्षणिकवादमें केवल समयके निरंश अंशका ही सिद्धांत नहीं है। किन्तु निरंश अंशमात्र द्रव्य, निरंश अंशमात्र क्षेत्र, व निरंश अंशमात्र भावको भी माना है। तब इस सिद्धांतमें अणु अणु तो द्रव्य है, प्रदेश

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रदेश मात्र क्षेत्र है। एक एक समयका ही अर्थ है व निरंश अंशमात्र भाव है। इस निरंशवाद सिद्धांतके अनुसार ज्ञान भी परमार्थसे निरंश, निर्विकल्प होता है, जिस ज्ञानमें निश्चय रहता है। उसमें निरंशता नहीं है। निर्विकल्पता नहीं है। वह सचयात्मक है इस कारण प्रमाण भी नहीं है। प्रथम व द्वितीय सूत्रमें ज्ञानको प्रमाण सिद्ध किया है वह तो ठीक ही है। ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है, किन्तु जो ज्ञान निर्विकल्प है वह ही सत्य है प्रमाण है, संविकल्प ज्ञान तो संवृत्तिसत्य है। रूढिवश सत्य है। ऐसा सिद्धांतपक्ष क्षणिकवादने रखा है। यह पक्ष निश्चयपोषक नहीं है तथा ज्ञान कोई भी स्वरूपतः निर्विकल्प नहीं होता, ज्ञानमें अर्थप्रतिभास होता ही है। जो प्रतिभास व्यवसायात्मक नहीं है वह भी प्रमाण नहीं है। इससे यह ही प्रमाणित है कि स्व व अपूर्व अर्थका व्यवसायात्मक ज्ञान ही प्रमाण है।

परज्ञानापेक्ष ज्ञानकी अप्रमाणता—जो ज्ञान प्रमाण होता है वह ज्ञान स्वयं प्रमाणपनेमें समर्थ है। जो ज्ञान स्वयं प्रमाणपनेमें समर्थ नहीं होता, जिस ज्ञानकी प्रमाणताके लिये दूसरे ज्ञानकी अपेक्षा हो वह ज्ञान प्रमाण नहीं है। यहां क्षणक्षय सिद्धांतमें दो प्रकारके ज्ञान माने हैं—निर्विकल्प ज्ञान, सविकल्प ज्ञान तो वे सब हैं जिन में जानकारी बनी है; पदार्थका प्रतिभास हुआ और निर्विकल्प ज्ञान ऐसा है कि जिसमें जानकारी कुछ नहीं, जिसमें कोई निश्चय ही नहीं हो सकता कि क्या जाना, ऐसा जो एक आनुमानिक प्रतिभास है वह निर्विकल्प ज्ञान है। तो वह निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि उस निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण सिद्ध करनेके लिये उस निर्विकल्प ज्ञानके बारेमें फिर और अनुमान करना पड़ता है तो जिस ज्ञानके साधनोंमें और ज्ञानकी जरूरत पड़े वह ज्ञान प्रमाण नहीं होता। जैसे हममें किसी पदार्थको जाना संशयज्ञान उठा तो संशयज्ञान प्रमाण क्यों नहीं है कि संशयज्ञानमें और निश्चय बनाने के लिये कि आखिर क्या है ? एक दूसरी जिज्ञासा पैदा करते हैं, दूसरा ज्ञान हम सोचते हैं कि आखिर यह सीप है या चाँदी है, क्या है ? उसके निर्णयके लिये हम एक नई आकांक्षा बनाते हैं इस कारण संशय प्रमाण नहीं है। तो जब निर्विकल्प ज्ञानके स्वरूपका निश्चय करनेके लिये अनुमान प्रमाण बनाना पड़ा तो निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण नहीं है।

निर्विकल्प ज्ञानकी सिद्धिमें परापेक्षता—यह नीला है, यह पीला है आदिक पदार्थोंमें जो कुछ भी विकल्प हुआ वह तो क्षण भरमें नष्ट हो जाता है क्षणिक सिद्धांत में। तो क्षण भरमें जिसका क्षय हो जाता है तो उसको सिद्ध काहेसे करेंगे ? अनुमान प्रमाणसे। तो अनुमानकी उपेक्षा होनेसे ये निर्विकल्प ज्ञान अप्रमाण हो गए। किसी भी पदार्थको जाननेके लिये उनका अनुमान ही समर्थ है। एक एक समयमें पदार्थ उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता तो उस पदार्थका प्रत्यक्ष भी न की तरह है। फिर उसको सिद्ध करनेके लिये अनुमान बनाया जाता है। प्रत्यक्ष तो प्रमाण नहीं रहा। अनुमान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी यों बताते हैं कि जगतके समस्त पदार्थ क्षणिक हैं सत् होनेसे। जो जो सत् होते हैं वे सब क्षणिक होते हैं ऐसा उनका अनुमान है और इस अनुमानसे निर्विकल्प ज्ञान और उसके विषयकी सिद्धि करते हैं तो निर्विकल्प प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं रहा यह सिद्ध करते हैं। जिस ज्ञानमें निश्चय न हो तो निश्चयात्मक ज्ञान प्रमाण नहीं है। प्रथम सूत्रमें ये ही तो शब्द दिये थे स्वअपूर्व अर्थका निश्चयात्मक ज्ञान प्रमाण है। तो क्षणिक वादियोंका निर्विकल्प ज्ञान निश्चयात्मक तो होता नहीं। उस ज्ञानमें कुछ अर्थका प्रतिभास भी नहीं होता, कुछ जानकारी ही नहीं फिर प्रमाण कैसा ?

निर्विकल्प ज्ञानकी प्रतीतिका अभाव– स्याद्वादमें जिसे दर्शन कहा है करीब इस प्रकारसे क्षणवादमें निर्विकल्प ज्ञान प्रमाणभूत माना गया है। तो उस ज्ञानकी सिद्धिमें उस विषयकी सिद्धिमें अनुमानकी अपेक्षा पड़ी है। तो जहाँ दूसरे व्यापारकी अपेक्षा रहे वह अप्रमाण है। जैसे सन्निकर्ष अप्रमाण है, क्योंकि सन्निकर्ष की प्रमाणताके लिए दूसरे प्रमाणकी अपेक्षा रहती है इसी प्रकार इस निर्विकल्प ज्ञान की प्रमाणताके लिये अनुमानकी अपेक्षा रही। और, दूसरी बात यह है कि निर्विकल्प ज्ञानका तो किसीको अनुभव भी नहीं होता। उसमें प्रमाण और अप्रमाणकी चर्चा क्या करें ? इन्द्रिय व्यापारके बाद आपको क्या मालूम पड़ता है ? स्व और पदार्थ का व्यवसायात्मक यह नीला है यह पीला है यह ज्ञान तो स्पष्ट मालूम होता है। आंखें खोलकर जो हमने जाना उस जाननेमें आपको स्पष्ट क्या आया ? यह नीला पीला यह ही तो अनुभवमें आया, ज्ञानमें आया। निर्विकल्प ज्ञानकी तो प्रतीति ही नहीं होती।

दार्शनिक क्षेत्रमें अलौकिक तत्त्वके ज्ञानका प्रयास– भैया ! दार्शनिक क्षेत्रमें कुछ ऐसे ढङ्गके मंतव्य हैं कि ऐसे अलौकिक तत्त्वकी ओर ज्ञान ले जावो कि जिसमें यहांकी सब सिट्टी भूल जायें, तो अलौकिककी ओर सब गये। जैन सिद्धान्तने भी तो परम शुद्ध निश्चयनयका जो विषय बताया है वह लौकिकतासे तो बहुत दूर है, अलौकिक विलक्षण है और उस परम शुद्ध निश्चयके विषयमें उपयोग जाय, शाश्वत शुद्ध चैतन्यस्वरूपमें उपयोग जाय तो कुछ समय बाद ऐसा लगेगा कि कुछ भी हमने नहीं जाना, मात्र आनन्दको अनुभवा, ऐसा निर्भार शून्यका अनुभव बनेगा। तो इस हीकी नकल दार्शनिकोंने की है कि इस ओर अपने ज्ञानको ले जावो कि फिर न कुछ रहे, शून्यसा रहे, कुछ भी हाथ न आये। इस प्रकारका उपयोग रहे। तो अब क्षणिकवादमें भी देखिये ! परमार्थभूत तत्त्व एक समय रहने वाला पदार्थ है। वह पदार्थ दूसरे समय ठहरता नहीं, क्षणिक सिद्धान्त है ना। और, दूसरे समय जब ठहरा नहीं और दूसरे समयमें हुआ हमें बोध और विकल्पका आकारका जो ज्ञान हुआ वह पदार्थोंकी उत्पत्तिके समयमें तो हुआ नहीं। तो इस बोधसे उस विकल्पका छूट जाना हुआ सो सत्य नहीं जाना। वह तो पहिले हुआ था और कब ज्ञान रहे तो वह काल्प-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निक बन गया, तो जितनी भी जानकारियाँ हैं सब क्षणिकवाद सिद्धान्तमें काल्पनिक हैं। जानकारी तो एक समयमें बनती नहीं। जिस समयमें पदार्थ उत्पन्न है उस ही समयमें पदार्थकी जानकारी आकाररूप आदिक बनते नहीं, उसमें असंख्याते समय लग जाते हैं। तो एक समयकी बात जाने वह निर्विकल्प ज्ञान है। जाना क्या ? जो भी होता हो वह प्रमाण है बाकी सब झूठ हैं। तो इस ओर उपयोग ले गए कि जहाँ न कुछ सा रह जाय।

अव्यवसायात्मक ज्ञानके प्रमाणत्वका प्रयास—भैया ! निर्विकल्प ज्ञान का अनुभाव तो किया, लेकिन निर्विकल्प ज्ञान किसी भी समय किसीको अनुभवमें नहीं आता। जब भी आंखें खुली तो यह नीला है यह पीला है इस प्रकारका आकार यही स्पष्टरूपसे अनुभवमें आता है। चर्चा यह चल रही है कि क्षणक्षयसिद्धान्तमें यह मानते हैं कि ज्ञान जो होता है वह दो ढङ्गसे होता है। सर्वप्रथम तो निर्विकल्प ज्ञान जिसके विषयका ग्रहण ही नहीं होता, एक समयवर्ती ज्ञान जिस समय निर्विकल्प ज्ञान हुआ उस समयमें जो पदार्थ हो केवल उस समयका ज्ञान होता है। उसका न आकार है, न रङ्ग है, न रूप है, न प्रकार है। और, उसके बाद जो आकार प्रकार, रङ्गरूप जाना वह विकल्प ज्ञान है। विकल्पज्ञान अप्रमाण है और निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण है। जिसमें जानकारी नहीं, प्रतिभास नहीं, व्यवहार नहीं वह तो प्रमाण है, लेकिन जिसमें व्यवहार है, आकार है, समझ है वह अप्रमाण है। तो ऐसा निर्विकल्प ज्ञान तो किसी भी जीवके अनुभवमें नहीं आता। जिस ज्ञानकी प्रतीति होती है, विकल्प ज्ञानमें होते हैं, आकारके रूपरङ्ग वस्तुकी प्रतीति होती है, वह ज्ञान प्रमाण माना जाता है। तो निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण नहीं किन्तु निश्चयात्मक ज्ञान प्रमाण है। इस प्रसङ्गमें विकल्पका तो अर्थ करें निश्चय और निर्विकल्पका अर्थ करें निश्चय नहीं। जिस ज्ञान में निश्चय नहीं बसा वह प्रमाण है। जिस ज्ञानमें निश्चय है वह झूठा है, ऐसा क्षण-क्षय सिद्धान्त है।

निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञानमें एकत्वके अध्यवसायका अनवकाश—यहाँ क्षणिकवादीका कहना है कि मूलमें तो हुआ निर्विकल्प ज्ञान, फिर हुआ सविकल्प ज्ञान। तो निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञानमें जीवको एकत्वका अध्यवसाय हो गया। इस कारण अज्ञानी जीव दोनोंको एकरूपमें मानते हैं क्योंकि ये दोनों ज्ञान एक साथ उत्पन्न होते हैं या बड़ी जल्दी क्रमसे हो जाते हैं, इस कारणसे इसमें एकत्वका भ्रम हो गया जीवका। और इसी कारणसे निश्चयात्मक ज्ञानमें तो स्पष्टता लगती है जीवको और अनिश्चयात्मक ज्ञानमें जीवको स्पष्टता नहीं लगती। इसपर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि कभी भी तो विकल्पको छोड़कर, निश्चयको छोड़ कर निर्विकल्प ज्ञानकी किसी भी रूपमें प्रतीति हो, किसीके भी हो तो ऐसा कह सकते हो कि अज्ञानी जनोंको निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञानमें एकत्वका भ्रम हो गया,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर कभी भी प्रतीति नहीं होती इन दोनों ज्ञानों की भेदसे तो फिर एकका दूसरेमें आरोप कैसे कर सकोगे ? क्या भिन्न भिन्न पुरुषोंमें भी किसीमें किसीका आरोप कर सकते कि इसका इस आत्मामें एकत्व है।

निर्विकल्प ज्ञानमें स्पष्टाभता कैसे ?—दूसरी बात यह है कि जिसमें स्पष्टता नहीं है वह प्रमाण कैसे ? क्षणिकवादी निर्विकल्प ज्ञानको तो स्पष्ट मानते हैं और सविकल्प ज्ञानको अस्पष्ट मानते हैं। निश्चयात्मक है उसे तो अस्पष्ट आभा वाला मानते और जिसमें निश्चय नहीं उसको स्पष्ट आभा वाला मानते। तो जिसका अनुभव आ रहा है उसमें तो स्पष्टता मानते नहीं और जिसका कभी अनुभव नहीं आता उस में स्पष्टता माने तो यह तो परीक्षकपनेकी बात नहीं रही। जैसा मन आये वैसा कह देनेकी बात हुई ! और, इस तरह यदि मानें कि निर्विकल्प ज्ञानमें दूसरे ज्ञानसे स्पष्टता जानी जाती तो अनेक ज्ञान इस हीमें लग बैठेंगे। पदार्थका ज्ञान ही कब होगा ? तो यह भी बात नहीं बनती कि वे निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञान एक साथ होते हैं इस कारण एकत्वका अध्यवसान है। एक साथ होनेसे यदि उनमें अभेद मान लिया जाय तो कोई बड़ी लम्बी चौड़ी कड़ी पपड़िया तेलकी खाये तो उसमें पांचों इन्द्रियोंका ज्ञान एक साथ चल रहा है, फिर उनका विषय एक क्यों नहीं मान लेते ? वहां भिन्न विषय क्यों माना ? तो जैसे वहाँ भिन्न विषय मानते हैं ऐसे ही यहां भी भिन्न विषय माना। सविकल्प ज्ञान तो संतानको जानता है और निर्विकल्प ज्ञान कुछ क्षणको ही जानता है जहां विषय भिन्न भिन्न है वहाँ एकत्वाध्यवसाय कैसा ?

निर्विकल्प ज्ञानमें परमार्थता व परमार्थ हेतुताके कारणकी खोज—भैया ! यह सब संतान क्षणिक सिद्धान्तमें झूठ है और एक समयमें जो है वही उनका परमार्थ है या यों सीधे रूपमें कह लीजिये कि यदि कोई पुरुष आत्माको अमर मानता होगा तो संसारमें रुलेगा और वह आत्मा एक क्षण रहता है दूसरे क्षणमें नहीं रहता ऐसा निश्चय करेगा तो उसका मोक्ष होगा। इस क्षणिक सिद्धान्तमें इस कल्पनाका कारण भी यह माना जा सकता है कि संतानको यदि कोई सत्य मान ले, जो कल था वही फिर। इसको यदि सत्य मान ले तो उसके विकल्प बैठेंगे और उसको सुख दुःखका अनुभव होगा तो संसारमें रुलेगा और केवल यह बात मान ले कि मैं आत्मा अब नहीं वह रहा यह तो सब नया नया हो रहा तो जैसे आपके किये हुए कामका तो हम फल न भोगेंगे न्यारे हैं हम जरूर कुछ। इसी तरह एक ही देहमें न्यारे न्यारे आत्माका बोध हो जाय तो फिर दुःख न होगा। क्षणिक सिद्धांतके समर्थनमें हम अभी कह रहे हैं। क्या किसीने भोगा यह बात भी उनके लगती है जिनकी संतान पर दृष्टि है ? जो क्षण क्षणका ही दिमाग बनाये उसके भोगना कहां। जो एक क्षण धर्मी आत्मा मानते, दूसरे समयमें वह रहा ही नहीं ऐसा जिसका दृढ़ निर्णय है उसमें तो भोगता है ही नहीं एक समयका भोगना क्या ? भोगना होता है अनेक समयोंमें।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और अनेक समयोंमें कोई एक चीज होगी नहीं।

क्षण और सन्तान - क्षण तो परमार्थ है और क्षण क्षणका जो समूह है उसे संतान माना गया है। तो जैसे दीपक जल रहा है और उस दीपकके जलते समय उस दीपकमें नवीन नवीन तेलकी बूँदें नवीन नवीन आती हैं तो वे दीपक तो हजार होगए २ मिनटमें पर वे हजार दीपक सिलसिलेसे बिना व्यवधानके हुएना, हजार बूँदके हजार दीपक। तो बिना व्यवधान उत्पन्न होनेको उनकी संतान मानते हैं। परमार्थसे तो एक बूँदका जो उजेला है वह परमार्थ है दृष्टान्तमें बिजलीमें भी जो बिजलीका कमसे कम समय मानते हो बिजलीके जघन्य अंशके जलनेमें। आप चाहे उसे एक सेकेण्डका १००वां भाग रख लीजिये। तो एक बिजली तो सेकेण्डके १००वें भाग वाली है। उसके बाद दूसरे भागमें दूसरी बिजली आयी। अब लगातार वह उजेला जलता रहे तो लोगोंको यह भ्रम हो गया कि यह बिजली नहीं है। बिजली तो १ सेकेण्डमें १०८ यूनिट हो चुकी, अविभागी अंशोंकी अविभागी अंशसे ही माप बनती है। तो मापज्ञानका आधार अविभागी पदार्थ होता है। तो अविभागी है एक समयका पदार्थ, वही वास्तविक है, संतान अवास्तविक है। ऐसा क्षणिक सिद्धांतका कथन है।

वस्तुमें तात्त्विकता—तात्त्विकत बात यह है कि कोई भी सत् हो वह द्रव्य-पर्यायात्मक होता है अर्थात् वह शाश्वत रहता है और उसका प्रति समय कुछ न कुछ परिणमन रहता है। अब इसमें हम परिणमनकी दृष्टि देते हैं तो प्रत्येक समयके परि-णमन एक दूसरेसे भिन्न हैं, किन्तु वे सारे परिणमन एक ही पदार्थके परिणमन हैं। यदि द्रव्यदृष्टि देते हैं तो उस दृष्टिमें पदार्थ शाश्वत रह गया। स्याद्वादकी शैलीसे तो आत्माका निर्वाण बुझनेका नाम नहीं है, किन्तु द्रव्यदृष्टिका विषयभूत जो चैतन्य स्व-भावका शुद्ध विकास रह जाना सो निर्वाण है, और क्षणिक सिद्धांतमें संतानका खात्मा हो जाना निर्वाण है। जबतक संतान रहती है तब तक संसरण है, संसारमें रुलना है। यदि वह संतान समाप्त हो गया, उस सिलसलेमें आत्मा उत्पन्न नहीं हो, बस वही निर्वाण है।

युगपद्वृत्तिसे दोनों ज्ञानोंमें एकत्वके भ्रमका निराकरण—प्रकरण यह चल रहा है कि सिद्धान्त तो यह है कि स्व और अपूर्व अर्थका व्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाण है, किन्तु इसके विरोधमें क्षणिकवाद यह कह रहा है कि ज्ञान तो प्रमाण है, पर व्यवसायात्मक ज्ञान तो काल्पनिक है वह प्रमाण नहीं है किन्तु निर्विकल्प, अनि-श्चयात्मक, अव्यवसायात्मक सत् मात्र जो निर्विकल्प ज्ञान है वह प्रमाण है। लेकिन निर्विकल्प ज्ञानकी तो किसीको प्रतीति ही नहीं होती। इस सम्बन्धमें यह कहा जारहा था कि निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञान ये एक साथ हो जाते हैं इस कारणसे लोगोंको एकत्वका भ्रम हो गया और इस कारण निर्विकल्प ज्ञानकी प्रतीति नहीं चल रही है इसका तो निराकरण किया है।

लघुवृत्तिसे दोनों ज्ञानोंमें एकत्वका निराकरण—अब दूसरी बात यदि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रखो जाय कि निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञान एक साथ तो नहीं होते, होते तो क्रमसे हैं किन्तु बहुत जल्दी हो जाते हैं इस कारण सविकल्प ज्ञानमें और निर्विकल्प ज्ञानमें एकत्वका अध्यवसाय हो गया अर्थात् निर्विकल्प ज्ञानके बाद सविकल्प ज्ञान होनेके बीच कोई व्यवधान अब नहीं रहा, समयभेद नहीं रहा इस कारण एकत्वका भ्रम हो गया। तो इस पर उत्तर देते हैं कि गधेका शब्द सुना होगा किन्हीं लोगोंने। गधा जो बोलता है वह श्वास बाहर करते हुएमें भी बोलता है और जब श्वास लेता है उसमें भी बोलता है। जैसे मनुष्य बोलते हैं तो श्वास जब बाहर होती है तब बोलते हैं, श्वास लेते हुएमें मनुष्य नहीं बोल सकते। मनुष्य श्वास बहुत शीघ्र ले लेते हैं। व्याख्यान देते हुएमें यह पता नहीं पड़ता कि बोला तो यह आधा मिनट लगातार तो आधा मिनट तक तो श्वास बाहर चलती रही और केवल रोकते हुए एक सेकेण्ड का आठवां भाग मान लो इतनेमें यह मनुष्य श्वास ले लेता है। और फिर आधा मिनट तक बोलते रहनेमें वह श्वांस बाहर निकलता जाता है। तो जब मनुष्य श्वाँस लेता है तब बोल नहीं पाता पर ये गधे तो श्वासको बाहर निकालनेमें भी बोलते हैं। तो उनकी अब दो आवाजें हो गयी। उन दो आवाजोंमें तो अभेद अध्यवसान नहीं होता। वहां तो निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्पज्ञान होता इसलिये एकत्वका भ्रम बता रहे। वहां भी तो दोनों आवाजें लगातार हुई, उसमें एकत्वका भ्रम क्यों नहीं हो जाता। भैया! ज्ञान सब साकार होते निर्विकल्प ज्ञानप्रमाण हैं, नहीं, व्यवसायात्मक ज्ञान ही प्रमाण होता है।

ज्ञानकी प्रमाणताका पोषण—यह परीक्षामुखसूत्र नामका ग्रन्थ है। इसकी टीका प्रभाचन्द्र आचार्यने की है, जिसका नाम है प्रमेय कमल मार्तण्ड। उसीके आधार पर यह प्रवचन चल रहा है। चूँकि किसी भी चीजका निर्णय करनेके लिये निर्णय करने वाला ज्ञान भी सही है या नहीं इसका निश्चय करना आवश्यक है। तो इस ग्रन्थमें ज्ञानकी परीक्षा की है कि कैसा ज्ञान सही होता और कौनसा ज्ञान मिथ्या होता है? सर्वप्रथम प्रमाणका स्वरूप प्रथम सूत्रमें कहा है कि जो निज और अपूर्व अर्थका निश्चयात्मक ज्ञान है वह प्रमाण है। इसपर ज्ञानको प्रमाण न मानने वाले कई सिद्धांतोंने अपनी बात रखी। किसीने रखी कि पदार्थोंका इकट्ठा जुड़ जाना यह प्रमाण है। किसीने रखा कि इंद्रियका पदार्थसे भिड़ जाना यह प्रमाण है। किसीने रक्खा कि इंद्रियमें हलन चलन व्यापार होना यह प्रमाण है। क्योंकि इंद्रियके हिले डुले बिना ज्ञान नहीं होता। और, किसीने कहा है कि आत्माका व्यापार प्रमाण है; लेकिन वह आत्मा अचेतन है, वह व्यापार भी अचेतन है। यों अज्ञानको प्रमाण मानने वाले मंतव्योंको तो निराकृत किया, इसके बाद फिर ज्ञानके प्रामाण्यकी पुष्टि की कि ज्ञान ही वास्तवमें प्रमाण है क्योंकि ज्ञानसे ही हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार होता है। इसपर क्षणक्षय सिद्धान्त यह कह रहा है कि ज्ञान तो प्रमाण है परन्तु निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण है सविकल्प ज्ञान प्रमाण नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञानकी भेदसे उपलब्धि न होनेके कारणके विकल्प—निर्विकल्प ज्ञानका तात्पर्य यह है कि पदार्थ तो है एकक्षणस्थायी एक क्षण बहुत छोटा समय है, तो जिस क्षणका पदार्थ है उस ही क्षणका प्रतिभास हो जाय इतना ही मात्र निर्विकल्प ज्ञान है और वह प्रमाण है। सविकल्पज्ञानका अर्थ है कि यह नीला है, पीला है, बड़ा है, छोटा है, सर्व प्रकारकी जानकारी होना इसका नाम है सविकल्प ज्ञान। तो लोकमें प्रमाणकी व्यवस्था तो सविकल्प ज्ञानसे होती है। तो लोकमें प्रमाणकी व्यवस्था तो सविकल्प ज्ञानसे होती है निर्विकल्पसे नहीं होती; किन्तु यह सिद्धान्त कह रहा है कि निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण है सविकल्प ज्ञान अप्रमाण है तो कुछ चर्चायें चलनेके बाद यह पूछा गया कि लोगोंको निर्विकल्पज्ञानकी तो उपलब्धि होती नहीं। जो कोई भी समझता है पदार्थको समझता है, जानकारी होती है। एक क्षणस्थायी ज्ञान और वह भी पदार्थके वर्तमानमें ही ज्ञान बन गया, दूसरे समय ज्ञान न रहे ऐसा ज्ञान प्रमाण है, वह तो किसीकी भी प्रतीतिमें नहीं आता। इसपर क्षणक्षयसिद्धान्तने बताया कि निर्विकल्पज्ञान और विकल्प ज्ञानमें सदृशता है इसलिए उनकी भेदसे उपलब्धि नहीं होती है कि यह निर्विकल्प ज्ञान है व यह सविकल्प ज्ञान है। तो भेदसे जो उपलब्धि नहीं होती वह सदृशताके कारण नहीं होती अर्थात् दोनों ज्ञानोंमें सादृश्य होनेसे एक ज्ञानने दूसरे ज्ञानको दबा दिया इस कारण एककी उपलब्धि नहीं होती। यदि सदृशताकी वजहसे एकत्वाध्यवसायकी बात कहोगे तो भला निर्विकल्प ज्ञानमें और सविकल्प ज्ञानमें सदृशता है काहे की? क्या एक ही विषय है? इससे सदृशता है या ज्ञान ही तो निर्विकल्प ज्ञान है और ज्ञान ही सविकल्प ज्ञान है यों ज्ञानरूपता दोनोंमें हैं इस कारण सदृशता है।

निर्विकल्प और सविकल्प ज्ञानमें एकविषयत्व और ज्ञानरूपत्वके कारण अभेदाध्यवसायका अभाव—निर्विकल्पज्ञान व सविकल्पज्ञानका विषय एक नहीं, सविकल्पका संतान और निर्विकल्पका विषय है क्षण इतना महान विषयभेद है, तो सदृशता कैसे बने? तथ्यकी बात यहाँ यह है कि ज्ञान जिस क्षण भी होता है कुछ न कुछ आकार, विकल्प जानकारी लेकर ही होता है। और, आकार विकल्प, जानकारी जब बनती है तब कुछ क्षणोंका बोध हो? पदार्थ एक ही क्षणमें होता है और उस ही क्षणमें ज्ञान बन जाय, आकार ग्रहण बन जाय यह तो नहीं हो सकता, क्योंकि क्षणवाद यह कहता है कि जितनी जानकारियाँ होती हैं वे सब मिथ्या हैं, अप्रमाण हैं, सही विषय हैं ही नहीं। किसको जानते, किसको जान रहे, वह तो इस जाननेसे पहिले ही नष्ट हो गया। तो सविकल्प ज्ञानने अवस्तुको जाना। जो कोई भी जानता है वह अवस्तुको जानता है। वस्तु तो एक क्षण रहता है उस क्षणमें निर्विकल्प ज्ञान होता है। निर्विकल्प ज्ञानमें आकार नहीं, विकल्प नहीं, तरङ्ग नहीं, बोध नहीं जानकारी नहीं। इसपर यह कहा जा रहा कि निर्विकल्प ज्ञानकी तो किसीको भी प्रतीति नहीं होती है और उसे तुम बताते परमार्थ! सारी जानकारियोंको बताते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो संतान अवास्तिविक, काल्पनिक। तो जो निर्विकल्प ज्ञान है उससे हितकी प्राप्ति नहीं होती, न अहितका परिहार होता। वह तो एक सोचने भरका काल्पनिक ज्ञान मान लिया। जो ज्ञान हितकी प्राप्ति कराये, अहितका परिहार कराये वह प्रमाण है और वह सविकल्प ज्ञान ही हो सकता है विषय तो एक रहा नहीं जिससे कि निर्विकल्प ज्ञान, सविकल्प ज्ञान समान बन जाय। यदि कहो कि ज्ञान वह है, ज्ञान ही यह है इस कारण सादृश्य है तो विकल्पोंमें जितनी विविध जानकारियां हैं, यह नीला है, पीला है तो ये सब भी ज्ञान हैं फिर ये जुदे-जुदे विषय क्यों हैं ? तो ज्ञानरूपताके कारण भी वह सदृशता नहीं पायी जाती है निर्विकल्पज्ञानमें और सविकल्प ज्ञानमें जिससे यह माना जाय कि सविकल्प ज्ञान बलवान है सो उसकी तो प्रतीति है निर्विकल्प ज्ञानकी प्रतीति नहीं है।

बलवत्ताके कारण एक ज्ञानसे ज्ञानान्तरके अभिभवके हेतु दोनों ज्ञानोंमें एकत्वाध्यवसायपर विकल्प—यदि कहो कि एकने दूसरेको दबा दिया इस कारण से निर्विकल्प ज्ञानका अलगसे कुछ बोध नहीं होता ? तो किसने किसे दबाया ? विकल्प ने अविकल्पको दबाया। सविकल्प ज्ञानने जिसमें जानकारी चल रही है उस ज्ञान ने क्षणिक निर्विकल्प ज्ञानको दबाया ? जैसे सूर्य तारागणोंको दबा देता है, यदि ऐसा कहते हो तो हम यदि इससे उल्टा कहने लगें तो उसका उत्तर क्या ? हम कहेंगे कि निर्विकल्प ज्ञानने सविकल्पको दबा दिया। यदि यह कहें कि सविकल्पज्ञान बलवान है इस कारण सविकल्प ज्ञान निर्विकल्पको दबा देता है। और लोगोंको एक सविकल्प ज्ञानकी प्रतीति रहती व निर्विकल्प ज्ञानकी प्रतीति नहीं रहती तो भला विकल्प ज्ञान में बलवत्ता किस बातकी है ? क्या बहुत विषय है विकल्प ज्ञानका इसलिये सविकल्प बलवान है या विकल्प ज्ञान निश्चयात्मक है इसलिये बलवान है ? इस प्रसंगमें इतनी बात सुगम शब्दोंमें स्पष्ट समझ लो कि सविकल्प ज्ञानका मतलब है जिसकी जानकारी हो रही है और निर्विकल्प ज्ञानसे मतलब क्या है ? जानकारीसे पहिलेका ज्ञान। उसका कुछ अर्थ रहा क्या ? तो सविकल्प ज्ञानको बलवान क्यों बताया ? बहुत विषय होनेसे या निश्चयात्मक होनेसे।

सविकल्पज्ञानकी स्वसिद्धान्तसे ही बहुविषयताका विरोध—यदि बहु विषय होनेसे सविकल्प ज्ञानको बलवान कहते हो तो ज्ञानके तो बहुत विषय हैं ही नहीं। सविकल्पज्ञान निर्विकल्पविषयको ही जानता है ऐसा इनका कहना है। जैसे जैन सिद्धान्तमें पहिले तो दर्शन होता, पीछे ज्ञान होता। तो दर्शनके मानिन्द इन्होंने माना है निर्विकल्प ज्ञान और ज्ञानके मानिन्द माना है सविकल्प ज्ञान। निर्विकल्प दर्शन होता, सविकल्प ज्ञान होता और इस सिद्धान्तमें ज्ञान ही दो किस्मके हैंनिर्विकल्प सविकल्प, और साथ ही यह मानते कि सविकल्प ज्ञान नई चीजको नहीं जानता किंतु निर्विकल्पने जो जाना उसे ही जानता है। निर्विकल्पने जिस पदार्थके सम्बन्धमें जाना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसे स्पष्ट करने वाला है सविकल्प ज्ञान । जरा क्षणक्षयाश्रित ज्ञानोंका स्वरूप समझने के लिये तुलना करते जाइये । जैन सिद्धान्तमें दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है और जिस पदार्थके ज्ञानके लिये दर्शन हुआ है उस ही पदार्थका ज्ञान होता है । तो उनकी तरह कुछ-कुछ यों कह लो कि दर्शनका जिसने दर्शन किया ज्ञान उसका ज्ञान करता है । इस ही तरहसे निर्विकल्प ज्ञानने जिस क्षणको जाना उस ही के सम्बन्धमें सविकल्प ज्ञान अपनी स्पष्ट जानकारी करता है । तो सविकल्प ज्ञानका बहु विषय कहां रहा बल्कि निर्विकल्प ज्ञानके बहुत विषय हो गए । और, सविकल्प ज्ञानका तो एक ही विषय रहा । निर्विकल्प ज्ञान ने जिसे जाना उसका ही बढ़ावा करना विकल्प ज्ञानका काम हुआ । यदि निर्विकल्प ज्ञानके विषयको छोड़कर अन्य कुछ विषय है सविकल्प ज्ञानका तो अगृहीत अर्थका ग्राही बन गया विकल्प ज्ञान । तो वह सविकल्प ज्ञान एक प्रमाण ही बन गया । तो बलवान तो कुछ रहा नहीं निर्विकल्प ज्ञान तुम्हारे मत से एक स्वतंत्र हुआ, सविकल्प ज्ञान स्वतंत्र हुआ, पर निर्विकल्प ज्ञानकी लोगोंको क्यों प्रतीति नहीं होती ?

क्षणवादमें निर्विकल्प ज्ञानका मन्तव्य—देखिये क्षणवादका भी निराकरण यों ही जल्दी नहीं हो जाता, इतनी बड़ी दृष्टि लगाकर सिद्धान्त दिखाया है उनका मंतव्य है कि समस्त वस्तुओंका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सब कुछ अखण्ड भिन्न है अर्थात् भेदकर करके जो आखिरी परभाव है वही वास्तिविक तत्त्व है । समयमें घंटेमें ६० मिनट होते हैं, १ मिनटमें ६० सेकेण्ड होते, यों अनेक निरंश अंश होंगे वहां निरंश समय परमार्थ पदार्थमें है ?जो भी दिखता है इसके टुकड़ेके और टुकड़े होते । यों अंश होते होते जो आखिरी अंश होगा अणु मात्र वह परमार्थ है, बाकी सब झूठे हैं । आत्मा नाम है ज्ञानका । जैसे इस द्रव्यमें यह पिण्ड है ऐसे ही ज्ञानके पिण्ड हैं । हमने समझा कि यह भींट है तो भींट एक अखण्ड परमार्थ नहीं, भींट तो परमार्थभूत अणुवोंका पिण्ड है । यों भींटका ज्ञान हुआ; इस ज्ञानमें अनगिनते ज्ञानोंका पिण्ड बना तब जानने में आया कि भींट है । जैन सिद्धान्त भी कहता है कि उपयोग अन्तर्मुहूर्त तक प्रवर्तता है, उससे छद्मस्थोंकी जानकारी होती है एक समयके उपयोगकी प्रवृत्तिसे तो सर्वज्ञता का ही ज्ञान होता है और छद्मस्थ जीव अन्तर्मुहूर्तके ज्ञानक्षणोंसे उपयोग बनता है । तो जितनी हम लोगोंकी जानकारियां हैं वे सब ज्ञान पिण्ड हैं । क्षणिकवाद यह कहता कि वह ज्ञान पिण्ड भी तो काल्पनिक है, मिथ्या है, उन ज्ञान पिण्डोंका विभाग करते जावो, आधा ज्ञान छोड़ा, फिर आधा ज्ञान छोड़ा, फिर जहां अविभागी ज्ञान होगा, वही वास्तविक ज्ञान है, वही प्रमाण है । और यह सविकल्प ज्ञान तो जैसे इन भौतिक पदार्थोंका पिण्ड बन गया है यह वास्तविक नहीं है; उनमें रहने वाले अणु वास्तविक है; इसी प्रकार जो जानकारी बनती हैं उनमें एक ज्ञानक्षण जो है वह प्रमाण है । सविकल्प ज्ञान क्षणोंका पिण्ड तो ज्ञान है सो सविकल्प ज्ञान अवास्तविक है ।

सविकल्प ज्ञानका आलोचन—इस प्रसङ्गमें कहा जा रहा कि जो एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षणका ज्ञान है उसमें प्रमाण और अप्रमाणकी व्यवस्था हो नहीं सकती है। प्रमाण और अप्रमाणकी व्यवस्था तो जहाँ पदार्थका स्पष्ट बोध होता वहाँ चलती है। तुम्हारा निर्विकल्प ज्ञान रहे तो रहे हम उसे प्रमाण नहीं कह सकते। यों तो प्रत्येक पदार्थमें जितने परिणमन होते हैं, जो स्पष्ट परिणमन हैं वे अनगिनते पदार्थोंके पिण्ड हैं एक-समयवर्ती परिणमनको कौन जानता है? ऐसे ही एक समयके ज्ञानसे प्रमाण व्यवस्था नहीं होती वह ज्ञान हितप्राप्तिमें अहितपरिहारमें समर्थ नहीं है इस कारण व्यवसाथात्मक ज्ञान प्रमाणभूत है। तो यह जो कहा जा रहा है कि सविकल्प ज्ञानने निर्विकल्प ज्ञानको दबा दिया इसलिए सविकल्प ज्ञान प्रतीतिमें नहीं आता है निर्विकल्प ज्ञान प्रतीतिमें नहीं आता। तो बतावो क्यों दबा दिया? क्यों बलवान है? यह सविकल्प ज्ञान बहुतविषय वाला तो रहा नहीं वह।

निश्चयात्मकताके कारण सविकल्प ज्ञान द्वारा निर्विकल्प ज्ञानके अभिभवका अभाव—यदि कहो कि सविकल्प ज्ञान निश्चयात्मक है इस कारण इस ज्ञानने निर्विकल्प ज्ञानको दबा दिया। निश्चय तो सविकल्प ज्ञानसे होता है निर्विकल्प से तो नहीं होता। तो वह बतलावो कि सविकल्प ज्ञान स्वरूपमें निश्चयात्मक है या पदार्थमें निश्चयात्मक है? अर्थात् सविकल्पज्ञान स्वरूपका निश्चय कराता है या पदार्थ का निश्चय कराता है? सविकल्प ज्ञान यदि अपने स्वरूपका निश्चय करता है तो क्षणक्षयसिद्धान्तमें ही यह भी माना है कि प्रत्येक ज्ञान अपने स्वरूपमें निर्विकल्प रहता है अर्थात् स्वरूपमें निश्चयात्मक होता नहीं है। कोई भी ज्ञान अपने स्वरूपका निश्चय नहीं करता ऐसा भी इसी सिद्धान्तमें कथन है। तो स्वरूपसे निश्चयात्मक तो रहा नहीं। अगर सविकल्प ज्ञान किसी पदार्थका निश्चय कराता है तो अब सविकल्प ज्ञानमें दो स्वभाव जुड़ गए। स्वरूपका तो निश्चय कराता नहीं और पदार्थका निश्चय कराता है सविकल्प ज्ञानमें दो स्वभाव आ गए। देखो यह चर्चा चल रही है अपने आपकी खुद की। हम आप जो जानते हैं वह जानन किस ढङ्गका होता है उस सम्बन्धमें कुछ लोग क्या मानते हैं इस अपने ज्ञानकी चर्चा चल रही है। और, उपयोग विशुद्ध करके सुनो तो क्षयोपशम तो सबके ही है, कुछ न कुछ अवश्य समझ में आयगा कि इस ज्ञानके बारेमें लोग क्या-क्या धारणा रखते हैं। एक बात और है विरोधकी धारणाका पता होनेसे विषय मँज जाता है। किसी चीजमें क्या-क्या खराबी हो सकती हैं इसका पता होनेसे चीजका पूरा ज्ञान होता है। प्रमाणके स्वरूपमें मौन दार्शनिक कैसा स्वरूप मानता है? यह जानकारी बन जानेसे अपने आप में ज्ञानका स्पष्ट निर्णय हो जाता है।

सविकल्प ज्ञानके निश्चयात्मकत्वके विकल्प व प्रतिविकल्प– अब यह कहा जा रहा है कि सविकल्प ज्ञान अर्थका निश्चय करता है, स्वरूपका निश्चय नहीं करता। तो ज्ञानमें दो स्वभाव हो गए स्वरूपका निश्चय न करना और पदार्थका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निश्चय करना। साथ ही तुलना करते जाइये —जब कि स्याद्वादने ज्ञानको स्वपर-निश्चयात्मक बताया। ज्ञान अपने स्वरूपका भी निश्चय करता है और पदार्थका भी निश्चय करता है। जैसे दीपक अपना भी प्रकाश करता और पदार्थका भी प्रकाश करता। पर, कोई सिद्धान्त तो ऐसा मानते हैं कि पदार्थका निश्चय करता है, स्वरूप का निश्चय नहीं करता। लेकिन जो पदार्थका निश्चय करता वह स्वरूपका निश्चय किये बिना पदार्थका निश्चय कर नहीं सकता है। जो स्वरूपका निश्चय करे वह पदार्थके ज्ञेयाकारके ग्रहण बिना स्वरूपका निश्चय नहीं करता। यह ज्ञानकी सामान्य विशेषात्मक प्रकृति है। तो अब सविकल्प ज्ञानमें दो स्वभाव पड़ गए। स्वरूपका निश्चय न करना, पदार्थका निश्चय करना इस तरह ये दो स्वभाव हुए और एक स्व-भाववान हुआ, तो ये तीनों परस्पर भिन्न हैं कि अभिन्न हैं।

क्षणक्षयके मन्तव्यमें सविकल्प ज्ञानके निश्चयात्मकत्वकी भी असिद्धि—अब यहां तीन चीजें आ गयी स्वरूपका निश्चय पदार्थका निश्चय और सविकल्प ज्ञान। इन तीनोंमें परस्पर भेद है या एक बात है ? यदि भेद है तो सम्बन्ध सिद्ध नहीं हो सकता। क्षणिकवादने तो समवाय आदि कोई सम्बन्ध नहीं माना, क्षणिकवाद प्रत्येक चीजको बिखरा बिखरा ही मानता है। वहां संयोग माना सो संयोग भिन्न पदार्थोंका ही होता, सो सम्बन्ध भी क्या। सम्बन्ध न बना तो फिर यह कहना असिद्ध है कि विकल्प बलवान है निश्चयात्मक होनेसे। यदि कहें कि वे दोनों स्वभाव माने स्वरूपका निश्चय नहीं करना, पदार्थका निश्चय करना और सम्यग्ज्ञान ये तीनों अभिन्न हैं तो एक ही बात रही। या स्वभाव रहा या स्वभाववान रहा। कथन्चित तादात्म्य मानते हो अर्थात् स्वरूप और पदार्थ इनका व ज्ञानका तादात्म्य है तो अर्थके सम्बन्धमें तो विकल्प बन गया, ज्ञान निश्चयात्मक बन गया। ज्ञानका जब तादात्म्य है तो स्व-रूपका निश्चयात्मक क्यों न बन जाय ? पदार्थका ही निश्चयात्मक क्यों रहा, अन्यथा तादात्मय नहीं रहा।

ज्ञानमें स्वरूपनिश्चयके बिना अर्थ निश्चयकी असंभवता—भैया ! सीधीसी बात है स्वरूपका जो निश्चय नहीं कर सकता ऐसा ज्ञान पदार्थका भी निश्चय करने वाला नहीं बन सकता। यदि स्वरूपके निश्चय बिना, स्वरूपका ग्रहण किये बिना पदार्थका निश्चय करले ज्ञान हो तो स्वरूप तो ग्रहण किया नहीं; तो यह भेद कैसे रहा कि अमुक पदार्थको ही जाना, अमुकको नहीं जाना ? सारे ज्ञान एक साथ हो जायेंगे। अग्रहीत स्वरूप वाले भी ज्ञान अर्थका ग्रहण करने वाले हो जायें, किन्तु ऐसा है नहीं, उन्होंने भी माना, सबने माना कि ग्राहकका अनुभव हुए बिना ग्राह्य अर्थात् पदार्थका संवेदन नहीं होता ग्राहक अर्थात् ज्ञान ग्राह्य—पदार्थ, क्या ऐसा दीपक देखा जो खुद प्रकाशरूप न हो और दूसरे पदार्थोंको प्रकाश किया करे। जलते हुए दीपकको लानेके लिये क्या कोई यह कहता है कि हमें दूसरा दीपक जलाकर देदें तब वह दीपक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ढूढ़ लायें ? अरे उस दीपकको खोजनेके लिये अन्य दीपककी क्या आवश्यकता है। इसी प्रकार जो भी ज्ञान होता है वह ज्ञान स्वयं ज्ञान स्वरूप है, पदार्थका ग्रहण करनेके साथ हीं साथ अपनेको ग्रहण करता रहता है। स्वरूपके निश्चय बिना पदार्थका निश्चय हो नहीं सकता। तो यदि स्वरूपका निश्चय उस ही ज्ञानसे नहीं मानते तो क्या अन्य ज्ञानोंसे मानते हो ? तो उस ज्ञानके स्वरूपका निश्चय अन्य ज्ञानोंसे हुआ। यों तो अनवस्था दोष हो गया। ज्ञान स्वयं स्वका प्रकाशक है और पदार्थका प्रकाशक है और जो स्वपर पदार्थका प्रकाशक है, निश्चयात्मक है वही ज्ञान प्रमाण है। अव्यवसायात्मक निर्विकल्पज्ञान प्रमाण नहीं है।

पदार्थकी गुणपर्यायात्मकताके मन्तव्य बिना विसंवाद—भैया ! द्रव्य गुणपर्यायात्मक होते हैं या यों कहिये कि पदार्थ द्रव्य गुणपर्यायात्मक होते हैं। उसमें से केवल पर्यायको ही सर्वस्व अर्थ मान लेनेपर क्षणिकवादकी उत्पत्ति हुई है और तब कुछ आपत्ति आयी कि जब आत्मा सब भिन्न भिन्न नये–नये, अलग–अलग ही हैं तो कलका स्मरण बना रहता है इसका क्या कारण है ? तो उसका कारण बताया है संतान। एक संतानमें जितने आत्मा हुए हैं उन आत्मावोंको अपने पूर्ववर्ती आत्माके किए हुए ज्ञानका पता रहता है। तथ्य तो यह है कि आत्मा तो वही एक है और उस के परिणमन नाना हैं तो अपने आत्माको अपने पूर्व परिणमनोंका स्मरण रहता है, किन्तु शाश्वतस्वरूप कुछ भी न मानकर भेदवादमें क्षणक्षणवर्ती पदार्थ मानते हैं तो क्षणिकज्ञान तथ्यभूत मानना पड़ेगा, यों निर्विकल्प ज्ञानको प्रमाण कहते हैं और सविकल्प ज्ञानको क्षणिकवादी अप्रमाण कहते हैं, किन्तु जो ज्ञान व्यवसायात्मक नहीं है वह प्रमाण नहीं होता, इस बातको तृतीय सूत्रमें कहा जा रहा है।

निर्विकल्प व सविकल्प ज्ञानमें कल्पित एकत्वाध्यवसायके लक्षणके विकल्प—क्षणक्षयसिद्धान्तमें प्रत्येक तत्त्वको चाहे वह द्रव्यरूपमें हो, चाहे क्षेत्ररूप में हो, चाहे कालरूपमें हो अथवा भावरूपमें हो, केवल एक–एक अंशरूपमें माना गया है। तो भावरूपमें यहाँ ज्ञानका प्रकरण चल रहा है। ज्ञान भी जो एक समयवर्ती पदार्थका एक समयवर्ती ज्ञान है वह प्रमाण है, ऐसा क्षणिकसिद्धान्त है, उस ज्ञानका नाम है निर्विकल्प ज्ञान, और फिर जो ये जानकारियाँ चलती हैं जिनमें रूप रङ्ग आकार प्रकार सभी ज्ञात होते हैं ये सब हैं सविकल्प ज्ञान। यह पूछा गया था कि निर्विकल्प ज्ञानकी तो किसीको भी प्रतीति नहीं होती और सविकल्प ज्ञान ही लोगोंको प्रतीत होता है, फिर आप काल्पनिक निर्विकल्प ज्ञान सिद्ध क्यों कर रहे हैं ? तो उत्तर यह दिया था क्षणिकसिद्धान्तसे कि निर्विकल्प ज्ञानमें और सविकल्प ज्ञानमें एकत्वका अध्यवसाय हो गया है। अज्ञानी जनोंको ऐसा सब कुछ विकल्पात्मक ही जचता है. इसपर यह प्रश्न पूछा जा रहा है कि निर्विकल्प ज्ञानमें और सविकल्प ज्ञानमें जो एकत्वका अध्यवसाय होता है उसका अर्थ क्या है ? क्या दोनों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानोंका एक विषय हो जाना ही अध्यवसाय है या किसीके द्वारा किसी दूसरेका विषय रुच जानेका नाम एकत्व अध्यवसाय है या दूसरेमें दूसरेका आरोप कर दिया इसका नाम एक व अध्यवसाय है ? इसमें तीन विकल्प रखे गये।

एकविषयित्व व विषयके एकत्वसे अभेदाध्यवसायकी असिद्धि—एक विषयपन तो कह नहीं सकते क्योंकि निर्विकल्प ज्ञानका तो सामान्य विषय है और विकल्प ज्ञानका विशेष विषय है। जिसमें पदार्थका आकार अवस्था आदिक कुछ भी ज्ञात न हो उसका नाम सामान्य है, जहाँ पदार्थका आकार आदिक ज्ञात हो वह विशेष है। तो निर्विकल्प ज्ञानमें केवल स्वरूप ही स्वरूप है, पदार्थ प्रतिभास नहीं है इस कारण वह सामान्यका विषय करता है और विकल्प ज्ञानमें चूंकि निर्णय है, आकार प्रकारका प्रतिभास है अतएव उसका विषय विशेष है। तो भिन्न विषय होनेसे एकविषयत्वकी बात रही नहीं इन दोनों ज्ञानों में। यदि यह कहो कि निर्विकल्प का तो विषय है दृश्य और विकल्प ज्ञानका विषय है विकल्प्य। यहाँ दृश्यका अर्थ आँखसे देखनेका नाम नहीं है। जिसे आकार प्रतिभासके बिना जाना तुमने उसे दृश्य कहते हैं। और, विकल्प पदार्थोंमें एकत्वका अध्यवसाय हो गया इस कारणसे ज्ञान में भी एकत्वका अध्यवसाय है, यदि ऐसा कहते हो तो वह भी युक्त नहीं है। दृश्यमें विकल्पका अध्यारोप किया, या यों कहिये सामान्यमें विशेषका अध्यारोप किया, तो किसीका किसीमें अध्यारोप करना, ग्रहण किए हुएमें बनेगा या अगृहीतमें बनेगा ? जिन दो पदार्थोंका ग्रहण हो गया हो, जानकारी हो गयी हो उसमें एक मुख्य बने, एक गौण बने यह बात बनेगी या बिना ग्रहण किये हुएमें बन जायगी ?

अभेदाध्यवसायके लिये दोनोंके ग्रहणकी असिद्धि—यदि यह कहो कि ग्रहण किए हुए ही दो में बनेगी तो क्या ये निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञान ग्रहण किए हुए हैं ? ग्रहण किए गये हों, भिन्न स्वरूप जान लिया गया हो उसका नाम ग्रहण करना कहलाता है। जैसे घट और पट, चौकी और पुस्तक, इन दोनोंको भिन्न-भिन्न स्वरूपसे ग्रहण किया गया है तो ये ग्रहण किये हुए कहलाते हैं। तो जो भिन्न स्वरूपसे ग्रहण किये गये हैं फिर उनमें एकत्वका आरोप क्या ? वे तो भिन्न ही हैं और फिर एक दूसरी बात यह है कि निर्विकल्प ज्ञानका और सविकल्प ज्ञानका दर्शनसे तो ग्रहण होता नहीं या यों कहो कि दृश्य तत्त्वका (सामान्य तत्त्वका) और विकल्प्यका तो प्रत्यक्षसे ग्रहण होता नहीं क्योंकि तुम्हारे क्षणक्षय सिद्धान्तमें प्रत्यय का विषय बताते हो केवल दृश्य और सामान्यको। निर्विकल्प ज्ञान तो प्रत्यक्षको मानता है और सविकल्प ज्ञान संतानको। तो सविकल्प ज्ञानका तो प्रत्यक्ष हो नहीं पाया फिर ग्रहण क्या हो ? कहो कि सविकल्प ज्ञानसे ग्रहण हुआ तो विकल्पने दृश्य का ग्रहण नहीं किया। कहो कि भिन्न-भिन्न ज्ञानोंसे हो रहे तो वह ज्ञान भी विकल्प्य है या अविकल्प्य ? यदि निर्विकल्प हैं तो विकल्प जैसे दोष आयेंगे। तो निर्विकल्प

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानमें सविकल्प ज्ञानका आरोप जो कर रहे हो वह ग्रहण किये हुएके कारण तो होगा नहीं।

अग्रहीतमें अध्यारोपकी असंभवता — यदि यह कहो कि न तो निर्विकल्प ज्ञानका ग्रहण हुआ न सविकल्पका फिर भी दूसरेका आरोप होगया तो अतिप्रसंग हो जायगा बिना ग्रहणकी हुई वस्तुका भी कहीं अध्यारोप करदो। आरोप किया जाता है तो किसी सादृश्यके कारण किया जाता है। जैसे पुराने समयमें एक परिपाटी ऐसी थी कि कोई विवाहके बहुत पहिले ने चारोंमेंया विवाहके कई महीने बादके नेगचारोंके दिन यदि दुल्हा उपस्थित नहीं है तो उसके छोटे भाईसे नेगचार करा देते थे। जैसे एक दस्तूर है मौर सिरानेका। मौर सिराते हुएमें यदि दुल्हा मौजूद न हो तो भाईसे सिरवा देते हैं। तो वहां सादृश्य माना कि आखिर उसका ही तो भाई है। कुछ सदृश्यता आयी तब तो अध्यारोप हुआ। पर जिसका ग्रहण ही नहीं है उसमें सदृशता क्या मानी जाय? सविकल्प ज्ञानका तो ग्रहण है और निर्विकल्प ज्ञानका ग्रहण नहीं है तो अब सदृश्यता क्या समझी जाय जिससे निर्विकल्पमें विकल्पका आरोप किया जाता। क्या वस्तु और अवस्तुका भी आरोप होता है? तो जो अवस्तु है इस का भी आरोप या अभेदरूप अध्यवसाय कर दो।

दोनों ज्ञानोंमें एक विषयत्वके अभावका उपसंहरण — क्षणक्षय सिद्धान्त पदार्थका नाम लेकर कोई बात नहीं चलती। उनका आत्मा है तो ज्ञान क्षण है और पदार्थ है तो नीला पीला ये पदार्थ हैं। नीले पीलेका आधारभूत कोई पदार्थ माना ही नहीं जा सकता क्योंकि उसमें क्षणक्षयका सिद्धान्त नहीं रह सकता। इसी तरह ज्ञान का आधारभूत गुण माना ही नहीं जा सकता, क्योंकि क्षणक्षयका सिद्धान्त फिर नहीं रहता। धर्मी और धर्म यह बात नहीं है वहां। धर्म धर्म ही उनका पूर्णतत्त्व है। धर्म मायने है अंशका। अंशी कोई नहीं है। अंशी अंगी पदार्थ ये सब कल्पनासे हैं। व्यवहारमें चूंकि लोग कहते आये हैं और हमारा व्यवहार चल रहा है इस कारण सत्य है परमार्थसे तो ज्ञान क्षणज्ञान नीला पीला आदिक ये ही सत्य हैं। तो एक विषय तो रहा नहीं निर्विकल्प ज्ञानका और सविकल्प ज्ञानका फिर अध्यवसाय कैसा?

अन्यके द्वारा अन्यके विषयीकरणरूप एकत्वाध्यवसायकी असिद्धि— यदि यह कहें कि किसी अन्यके द्वारा किसी अन्यका विषय कर लेनेका नाम एकत्व अध्यवसाय है, निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा सविकल्प ज्ञानका विषय हो जाय, सविकल्प ज्ञानके द्वारा निर्विकल्प ज्ञानका विषय हो जाय इसके कारण अध्यारोप है। तो यह बात यों नही बन सकती कि निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञान एक साथ उत्पन्न होते माने गए, देखिये पदार्थमें वर्तमान एक समयमें जो ज्ञान हुआ वह निर्विकल्प ज्ञान है और उस ही समयमें सविकल्प ज्ञान भी तो चल रहा है उस ही समय वाले पदार्थ का सविकल्प ज्ञान नहीं चल रहा है पर सभी समयोंमें सविकल्प ज्ञान भी चल रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है और सभी समयोंमें प्रतिक्षण प्रतिक्षण निर्विकल्प ज्ञान भी चल रहा है, ऐसा नहीं होता कि पहिले निर्विकल्प ज्ञान हो और उसके अनन्तर सविकल्प ज्ञान हो।

निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञानकी एक समयभविताकी आलोचना—जैसे स्याद्वादमें छद्मस्थ जीवोंके दर्शन पहिले माना है ज्ञान पश्चात् होना माना है। उसमें समयभेद है। जिस समयमें दर्शनका उपयोग चल रहा है उस समय में ज्ञानका उपयोग नहीं है। और, एक बात यह भी समझें कि छद्मस्थ जीवोंके भी ऐसा नहीं है कि दर्शन गुणका जिस समय परिणमन चल रहा है उस समय ज्ञानका परिणमन चल रहा है। तो जैसे दर्शन गुणका परिणमन और ज्ञान गुणका परिणमन दोनों एक साथ हैं किन्तु उपयोगमें फर्क है, दर्शनका उपयोग जिस समयमें है उस समय ज्ञानका उपयोग नहीं होता, क्योंकि दर्शन और ज्ञान गुणके परिणमन को भी क्रमसे मान लें तो वह गुण न रहेगा। तो जैसे स्याद्वादमें दर्शन और ज्ञान गुणका परिणमन एक साथ है इस तरहसे इस सिद्धान्तमें भी यह मान लिया गया कि निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञान एक साथ हैं लेकिन जैसे एक साथ दर्शन और ज्ञान परिणमन है तो वहाँ दर्शन परिणमनने ज्ञानका विषय नहीं किया, ज्ञान परिणमनने दर्शनका विषय नहीं किया, क्योंकि समान कालमें होने वाले उस एकके द्वारा दूसरा विषय नहीं होता तो ये भी निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञान एक साथ होते रहते हैं तो वे स्वतन्त्र होंगे। कोई किसीको विषय करले यह बात न बन सकी और जब किसीने किसी दूसरेका विषय नहीं लिया तो एक दूसरेमें अध्यारोप भी करना सम्भव है क्या ?

दोनों ज्ञानोंमें परस्पर अध्यारोपकी असिद्धि—यहाँ इस प्रकरणकी चर्चा यों आ गयी कि आचार्यदेवने इस सिद्धान्तमें यह बात रखी है कि प्रमाण वही ज्ञान होता है जो स्व एवं अपूर्व अर्थका व्यवसायात्मक हो अर्थात् जो निजका और पदार्थका निश्चय करे वह ज्ञान प्रमाण है। इसपर क्षणिकवादीने यह बात कही कि निश्चय करने वाले ज्ञान तो सभी अप्रमाण होते हैं। क्योंकि जिसका निश्चय कर रहे हों वे सब मिथ्या हैं और जो वास्तविक है उसका प्रत्यक्ष तो होता है पर निश्चय नहीं होता। यह क्षणिकवादका सिद्धान्त है। इसपर निर्विकल्प ज्ञानमें प्रमाणता नहीं है यह बात अनेक विकल्प उठाकर कही जा रही है। तो पूर्वपक्षमें यह बताया कि निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञानमें एकत्वका भ्रम हो गया है इस कारण निर्विकल्प ज्ञानकी लोगोंको प्रतीति नहीं है; एकका दूसरेमें अध्यारोप हो गया। तो यह बतलावो विकल्प ज्ञानमें निर्विकल्पका आरोप किया जा रहा है या निर्विकल्प ज्ञानमें विकल्प ज्ञानका आरोप किया जा रहा है ? अर्थात् विकल्प ज्ञानको निर्विकल्प रूपसे बनाना यही है विकल्पमें निर्विकल्पका आरोप, और निर्विकल्प ज्ञानको विकल्पात्मक बना डालना यही है निर्विकल्पमें विकल्पका आरोप। यदि विकल्प ज्ञानमें निर्विकल्प

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का आरोप करते हो तो विकल्प तो सब खतम हो गए, फिर व्यवहार कुछ रहना ही न चाहिए। सारेके सारे ज्ञान निर्विकल्प हो जाना चाहिए। सो निर्विकल्प ज्ञानसे कुछ लोगोंमें भी व्याख्या चलती है क्या ? और, यदि निर्विकल्पमें विकल्प डाल दिया तो निर्विकल्पकी बात ही मत करो। सब ज्ञान सविकल्प हो जायेंगे।

क्षणक्षयमें ज्ञानस्वरूपकी व अध्यारोपकी असिद्धि— ज्ञानमात्र आत्मा है और वह क्षणज्ञानमात्र है। न तो क्षणज्ञानसे अन्यसमयमें रहने वाला कोई आत्मा है और न उस ज्ञानका आधारभूत धर्मी आत्मा है, इस सिद्धान्तमें अन्य गुण तो माने नहीं जा सकते और सामान्य विशेष ये दो तत्त्व हैं ही। उनसे मुकरा नहीं जा सकता, तब सामान्य अंशको विषय करने वाला निर्विकल्पज्ञान और विशेष अंशको विषय करने वाला सविकल्प ज्ञान मानना पड़ा। स्याद्वाद दर्शनमें आत्मा एक धर्मी है, पदार्थ है और इसमें ज्ञान दर्शन आदिक अनेक धर्म हैं। निज सामान्यका विषय करने वाला दर्शन है और विशेषको विषय करने वाला ज्ञान है। अथवा यों कहो कि सामान्यविशेषात्मक पदार्थको सामान्य पद्धतिसे ग्रहण करने वाला दर्शन और विशेष पद्धतिसे ग्रहण करने वाला ज्ञान है, यह व्यवस्था भिन्न-भिन्न गुणोंके द्वारा बनती है, पर एक ही ज्ञान सामान्य विशेषकी व्यवस्था करे और वह भी क्षणिक और संतान-रूपसे करे तो उसमें ये सब विकल्प उठ रहे हैं। चाहे दो में से एककी प्रतीति तो हो रही है चाहे निर्विकल्प ज्ञानकी कह डालो, चाहे विकल्पज्ञानकी कह डालो मगर प्रतीति हो रही है स्पष्टरूपमें तो अब किसका अध्यारोप कहें ?

निर्विकल्प और विकल्पज्ञानके मन्तव्यका विधान— निर्विकल्प ज्ञान तो जिसमें कुछ निश्चय ही नहीं पड़ा उसे तो माना जा रहा है स्पष्टज्ञान, प्रत्यक्षज्ञान और विकल्पज्ञान जिसमें अवस्था, आकार सब कुछ ग्रहणमें आ रहा है और हम आप पक्की तरहसे जान रहे हैं ऐसा कहते हैं उसे माना है अविशद, अस्पष्ट। यह बात क्यों हुई ? विकल्पज्ञान इतना स्पष्ट क्यों लग रहा है ? तो इसके उत्तरमें क्षणवादने यह बताया है कि विकल्पज्ञानमें निर्विकल्प ज्ञानका आरोप है, निर्विकल्प धर्मकी छाप है इसलिए विकल्पज्ञान स्पष्ट लग रहा है। तो भाई निर्विकल्पज्ञानमें विकल्प-धर्मका अध्यारोप कर दें और यदि यह बतावें कि निर्विकल्प धर्मके द्वारा विकल्प धर्मका अविभव हो गया इसलिए विकल्प तो विशद मालूम पड़ता है और निर्विकलप की प्रतीति ही नहीं होती तो यह बात तो हम उल्टा भी कह सकते कि भाई ! विकल्पके द्वारा निर्विकल्पका अविभव होता है। तो सब जगह फिर अविशदपना ही रहना चाहिए।

निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा सविकल्पज्ञानके अभिभवकी अप्रतीति— देखिये भैया ! बात यह बहुत अंशोंमें सिद्ध भी कर सकते कि विकल्पज्ञानके द्वारा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निर्विकल्प ज्ञान दब गया, पर यह दृष्टि न कर पायेंगे कि निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा विकल्पज्ञान दब गया, तो जब विकल्पज्ञानके द्वारा निर्विकल्प दब गया तो विकल्पक ज्ञान जैसे अस्पष्ट है इसी प्रकार निर्विकल्प ज्ञान भी अस्पष्ट हो जायगा, फिर तो कोई प्रत्यक्ष नहीं रहा तुम्हारे सिद्धान्तमें। तो निर्विकल्प और विकल्पज्ञान ये दो ज्ञान जुदे नहीं हैं। ज्ञान एक ही प्रकारका होता है जिसमें विशेषका प्रतिभास हो वह ज्ञान है। व्यवसायात्मक ज्ञान ही ज्ञान है। जो अव्यवसायात्मक है वह ज्ञान नहीं।

विरुद्ध कल्पनाका व्यर्थ प्रयास -भैया! इसके विरुद्ध कल्पनाएँ क्यों करते हो कि निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण है और वह निर्विकल्पज्ञान अनिश्चयात्मक है तथा स्पष्ट है। अनिश्चयात्मक होकर भी स्पष्ट है और वही प्रमाण है। देखिये उन दोनों बातोंमें एक भी बात प्रतीतिमें नहीं आती। जो निश्चयात्मक है उसकी हम चर्चा क्या करें और जो अनिश्चयात्मक है वह स्पष्ट कैसे? तो निर्विकल्पज्ञानके द्वारा विकल्पका अभिभव होता न तो यह कह सकते और विकल्पके द्वारा निर्विकल्प अविभव होता न यह कह सकते।

सहभाविताके कारण ज्ञानके द्वारा ज्ञानके अभिभवका अभाव— अथवा मान लो अभिभव हो गया दब गया तो क्यों ऐसा हो गया? ये दोनों एक साथ उत्पन्न हुए इस कारण हो गया या इन दोनोंका विषय एक है इसलिए हो गया या ये दोनों अभिन्न एक सामग्रीसे उत्पन्न होते हैं इसलिए अभिभव हो गया। यदि कहो कि विकल्पज्ञान और निर्विकल्पज्ञान दोनों एक साथ होते हैं इसलिए एकके द्वारा एकका अविभव हो गया। तो देखिये जिस समय हम किसी घोड़ेका चिन्तन कर रहे हैं, किसी घोड़ेके सम्बन्धमें कुछ विचार कर रहे हैं और उसी समय निकल जाय सामनेसे गाय तो हमारे दो ज्ञान एक साथ हो गए। गायका दर्शन और घोड़ेका विकल्प। तो एक साथ होनेसे यदि स्पष्टज्ञानके द्वारा अस्पष्ट ज्ञानका अभिभव हो जाता है तो जैसे गौदर्शन हमारा स्पष्ट हो गया, प्रत्यक्ष हो गया इसीप्रकार अश्व विकल्प भी प्रत्यक्ष हो जाना चाहिए, किन्तु अश्वविकल्प प्रत्यक्ष माना नहीं तो सहभाविताके कारण अभिभव हो जाना यह बात बनती नहीं।

अभिन्नविषयताके कारण ज्ञानके द्वारा ज्ञानके अभिभवका अभाव— यदि भिन्न विषयके कारण यह बतावेंगे कि गौदर्शनसे अश्वविकल्पका स्पष्ट प्रतिभास नहीं होता क्योंकि उसका भिन्न विषय है तब देखिये दूसरी आपत्ति। शब्दका जो स्व लक्षण है उसका प्रत्यक्षसे अनुभव करने वाले आप लोगोंको शब्दके क्षणक्षयित्ताके अनुमानका स्पष्ट प्रतिभास कर लेना चाहिये। जैसे यह नीला है, यह पीला है इस प्रकारका ज्ञान प्रत्यक्ष माना गया है तो यह तो रूप गुणकी बात है, नेत्र इन्द्रियसे ज्ञानकी बात है। ऐसे ही समस्त इन्द्रियका जो तत्काल ज्ञान होता है वह सब प्रत्यक्ष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

माना है ! तो शब्द सुलक्षणको प्रत्यक्षसे अनुभव करने वाले आप शब्दके ही विषयमें ये शब्द क्षणिक हैं ऐसा जो अनुमान करते हो वह भी तो एक विषयका हुआ ना, फिर उसे क्यों नहीं तुम अभिभव याने विशद मान लेते हो ? इस ऐसे ही यह कहना भी युक्त नहीं हैं कि अभिन्न विषयत्व होनेसे निर्विकल्प ज्ञानने विकल्पका अभिभव किया या सविकल्प ज्ञानने निर्विकल्पका अभिभव किया। सीधा मान लो जो होता है क्या कि पदार्थका आकार प्रकार सब जानते हैं और वही विकल्पात्मक ज्ञान है, वही प्रमाण है। निर्विकल्प ज्ञानका जिसमें निश्चय नहीं बसा, फिर स्पष्ट विशद प्रत्यक्ष सिद्ध करनेका क्यों व्यर्थ प्रयत्न करते हो। सीधी बात जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय करादे वह ज्ञान प्रमाण है। जिस ज्ञानके द्वारा सिद्धान्त प्रतिपादित किया जायगा, वह ज्ञान कैसा है ? उसका स्वरूप कहा जा रहा है और उस ज्ञानकी यहाँ परीक्षा की जा रही है।

अभिन्न विषय होनेसे निर्विकल्प ज्ञान द्वारा सविकल्प ज्ञानके अभिभव के पक्षका उत्थान क्षणक्षय सिद्धान्तमें जो परमार्थ ज्ञान है वह तो निर्विकल्प ज्ञान माना है और जो काल्पनिक पिण्डात्मक संतानरूप ज्ञान है उसे सविकल्प ज्ञान माना है तथा सविकल्प ज्ञानको तो अस्पष्ट माना है और निर्विकल्प ज्ञानको स्पष्ट माना है। इस प्रसङ्गमें जब यह देखा जा रहा है कि सविकल्प ज्ञान तो स्पष्ट रहता है और निर्विकल्प ज्ञानमें स्पष्टता है नहीं तो यह पूछा गया उनसे कि यह क्या मामला है कि स्पष्टता तो प्रतीत होती है सविकल्प ज्ञानमें और निर्विकल्प ज्ञानका कुछ पता ही नहीं रहता तो इसपर बौद्धसिद्धान्तने यह उत्तर दिया था कि स्पष्टता, विशदता तो निर्विकल्प ज्ञानमें ही है सविकल्प ज्ञानमें स्पष्टता नहीं है, लेकिन निर्विकल्प ज्ञानने सविकल्प ज्ञानको दबा दिया तो विकल्प ज्ञानकी अविशदता तो दब गयी और निर्विकल्प ज्ञानकी विशदता विकल्प ज्ञानमें मालूम पड़ने लगी। इसपर यह पूछा गया है निर्विकल्प ज्ञानने सविकल्प ज्ञानको इस तरह दबा क्यों दिया ? क्या दोनोंका अभिन्न विषय है इसलिए निर्विकल्प ज्ञानने विकल्प ज्ञानको दबा दिया ?

अभिन्न विषयत्वके कारण निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा सविकल्प ज्ञानके अभिभव सोनेका प्रतिषेध—यदि अभिन्न विषयके कारण निर्विकल्प ज्ञान सविकल्प ज्ञानको दबा दे तो देखिये—शब्दका प्रत्यक्ष निर्विकल्प ज्ञान हुआ और फिर शब्दका ही यह क्षणिक है ऐसा अनुमान किया तो अनुमान हो गया सविकल्प ज्ञान। तो इन दोनों ज्ञानोंका विषय तो शब्द ही रहा ना, एक विषय रहा ना, तो यहाँ शब्दके निर्विकल्प ज्ञानने शब्दके अनुमान विकल्पको क्यों न दबा दिया और शब्दके अनुमान विकल्पमें स्पष्टता क्यों न आगई ? यदि यह कहो कि शब्दके प्रत्यक्ष ज्ञानका और शब्दके क्षणक्षयके अनुमानका कारण अलग-अलग है। भिन्न सामग्रीसे उत्पन्न हुए हैं अर्थात् अनुमानरूप विकल्प ज्ञान तो साधन लिंगसे होता है इस कारण शब्दके प्रत्यक्ष ने शब्दके अनुमानका अभिभव नहीं किया। तो यहां भी ऐसा मान लो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभिन्न सामग्रीप्रभवत्वके कारण निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा सविकल्प ज्ञानके अभिभव होनेका प्रतिषेध—जितने भी सविकल्प ज्ञान होते हैं उनकी सामग्री साधना आदिक भिन्न होते हैं और निर्विकल्प ज्ञानकी सामग्रीतो स्वलक्षण है ही। तब किसी भी विकल्प ज्ञानका निर्विकल्प ज्ञान द्वारा अभिभव नहीं हो सकता और तिसपर भी एक साधारणस्वरूपसे अभिन्न विषय मानकर निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा सविकल्प ज्ञानका अभिभव मानते हो तो सारे विकल्पोंका स्वसम्वेदन ज्ञानसे अभिभव हो जाना चाहिए। किसी ही विकल्पका अभिभव क्यों होता है ? यहाँ यह कहा है कि सारे विकल्प ज्ञान तो वासनासे उत्पन्न होते हैं और निर्विकल्प ज्ञान स्वसम्वेदन मात्रसे होता है इस कारण भिन्न सामग्री है, तो फिर यहाँ भी अभिभव न हो सकेगा। जो हमें सारे सविकल्प ज्ञान प्राय: स्पष्ट नजर आते फिर यह स्पष्टता न नजर आना चाहिए क्योंकि यहाँ भी भिन्न सामग्री है।

निर्विकल्प ज्ञान व सवकिल्प ज्ञानमें एकत्वके अध्यवसायक ज्ञानके विकल्प -प्रकरणमें यह बात कही जा रही है कि जो निर्विकल्प प्रतिभास है वह तो माना क्षणिकवादमें प्रमाण और आकार रूप रङ्ग आदिकका जो प्रतिभास होता है उसे माना है मिथ्या, अप्रमाण, भ्रम। लेकिन जो व्यवसायात्मक ज्ञान है सविकल्प ज्ञान, जिसमें सारे निश्चय पड़े हुए हैं वह अप्रमाण नहीं हो सकता प्रमाण ही है और निर्विकल्प ज्ञान जिसकी प्रतीति नहीं, जिसकी न चर्चा है, उसके प्रमाणकी बात कैसे कही जाय ? स्पष्ट तो यह समझमें आ रहा है कि सविकल्प ज्ञान तो विशद है, व्यवसायात्मक है, प्रमाण है। इससे ही व्यवहार चलता, मोक्षका उपाय भी सविकल्प ज्ञानसे निर्णीत होता और निर्विकल्प ज्ञानकी किसीको भी सुध नहीं केवल कथनमात्र है। यहाँ निर्विकल्पसे मतलब है अर्थप्रतिभासरहित ज्ञान, न कि राग-द्वेषरहित ज्ञान। अर्थप्रतिभासरहित ज्ञान और अर्थप्रतिभास वाला ज्ञान, इनमें क्षणिकवादी एकता सिद्ध कर रहे हैं जिससे कि यह सिद्ध कर सकें कि इस एकता के कारण सविकल्प ज्ञानमें स्पष्टता समझमें आती है। तो अच्छा सुनो ! निर्विकल्प ज्ञानमें और सविकल्प ज्ञानमें प्रथम तो एकता बनती नहीं और जबरदस्ती मान भी लें तो यह बताओ कि इन दोनोंके एकत्वको निर्विकल्प ज्ञान निश्चय करता है या सविकल्प ज्ञान निश्चय करता है या दोनोंसे कोई अलग ज्ञान है जो निश्चय करता है ?

निर्विकल्प व सबिकल्प ज्ञान द्वारा दोनों ज्ञानोंके एकत्वाध्यवसायका अनिर्णय—यदि निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञानकी एकताका कोई निर्विकल्प ज्ञान निश्चय करता है तो यह बात अशक्य है। निश्चय करनेका माद्दा निर्विकल्प ज्ञान में है ही नहीं। और, यदि निश्चय करनेकी प्रकृति निर्विकल्प ज्ञानको मान लेते हो तो जिस जिसमें निश्चयकी प्रकृति है वह वह तुम्हारे सिद्धान्तमें भ्रान्त है तो यह निर्विकल्प ज्ञान भी भ्रान्त हो जायगा। विकल्प ज्ञान भी उन दोनों ज्ञानोंमें एकताका निश्चय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं कर सकता, क्योंकि विकल्पका विषय निर्विकल्प है ही नहीं । यदि विकल्पका विषय निर्विकल्प बन जाय तो विकल्प भी स्वलक्षणगोचर हो जायगा अर्थात् मात्र अपने उस अनिर्वचनीय स्वरूपका प्रतिभास हो जायगा तो वह भी प्रमाण बन बैठेगा, तब यह जो तुमने कहा है कि अवस्तुका प्रतिभास करना विकल्प ज्ञान कहलाता है इसका विरोध हो जायगा, और विषय करे नहीं और आरोप मान लिया जाय यह बनता नहीं। किसी एकका किसी दूसरे गौणमें यदि आरोप करते हैं तो दोनोंका ज्ञान होगा तभी तो आरोप बनता। जैसे जिसने चाँदीको कभी जाना ही नहीं वह उस चाँदी का आरोप सीप आदिमें कैसे कर सकता है ? आरोप भी गृहीत पदार्थमें होता है अगृहीतमें नहीं होता।

ज्ञानान्तर द्वारा दोनों ज्ञानोंके एकत्वके अध्यवसायका अनिर्णय—यदि कहो कि दोनों ज्ञानोंकी एकताको कोई ज्ञानान्तर निर्णीत करता है तो वह निर्विकल्प है या सविकल्प, उसमें भी दोनों तरहके दोष आते हैं और देखिये निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञान दोनों ही ज्ञानकी एकताका निश्चय करा रहे हैं किसी ज्ञानान्तरसे जो किन निर्विकल्प है न सविकल्प है तो ऐसे विजातीय ज्ञानसे निर्णय करानेपर तो बहुत बड़े अनिष्ट प्रसंग उपस्थित हो जायेंगे। इन्द्रिज्ञानसे ही जो देशकाल स्वभावसे विप्रकृष्ट[दूर] है उनका और जो देशकाल,स्वभावसे निकट है ऐसे घट आदिकका इनका भी एकत्व कर दो। जैसे कहा है ना कि ऊंट और गधेको जोड़ दो। इस प्रकार जिस चाहेंकी एकता कर डालो। कोई व्यवस्था ही न रहेगी। इस कारण तुम्हारा यह कहना अयुक्त है कि निर्विकल्प ज्ञान और सविकल्प ज्ञानमें एकत्वका भ्रम हो गया इस कारण सविकल्प ज्ञानमें स्पष्टता नजर आती है। अविकल्प ज्ञान सिद्ध होता नहीं है, व्यवसायात्मक नहीं है अतएव ये सब अभिभव आदिक मानना कल्पित है।

प्रमाणस्वरूपका सभूमिक सिद्धान्त स्थापन— बात तथ्यकी यह है कि हम आप सब ज्ञानात्मक हैं, ज्ञान स्वरूप हैं, ज्ञानके सिवाय और हम आपका स्वरूप क्या बताया जाय ? एक कल्पना कर लो कि इस आत्मामें सिर्फ ज्ञान भर तो मानें नहीं और सारे गुण मानते जावें इसमें आनन्द भी है, इसमें सूक्ष्मत्व भी है, इसमें अमूर्तत्व है। सारी बातें मानते जावें उसका अर्थ क्या निकला ? जब आत्माका असाधारण स्वलक्षण ही नहीं माना गया तो वह तो अवस्तु है। अवस्तुमें अनेक गुणोंको लादने का मतलब क्या ? आत्मा ज्ञानस्वरूप है और ज्ञानका लक्षण है स्वपर प्रकाशकता सो जो स्वका भी प्रकाशक हो और परका भी प्रकाशक हो वह ज्ञान प्रमाण है।

ज्ञानकी स्वपर प्रकाशकताका अर्थ—स्वपर प्रकाशकताका भी अर्थ ध्यान से सुनिये। इसमें स्वका अर्थ आत्मा न करिये कि ज्ञानका काम आत्माका भी प्रकाश करना है और पर पदार्थका भी प्रकाश करना है, किन्तु ज्ञानके ही स्वरूपका नाम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यहाँ स्व है, जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह इस ज्ञानका और पदार्थका भी निर्णायक है, जैसे बोध हुआ कि यह चौकी है तो इस ज्ञानके अपने आपका भी निःशंक निर्णय किया कि मैं ठीक हूं। यह ज्ञान ठीक है और चौकीका भी निर्णय हुआ कि यह चौकी है यह बात ठीक है। इस ज्ञानमें दो पद्धतियां एक साथ पड़ी हुई हैं। जो ज्ञान समझता है कि यह अमुक पदार्थ है तो अमुक पदार्थ ही है इस निश्चयके साथ यह भी निश्चय बना है कि यह ज्ञान सही ही है। यह पदार्थ ऐसा ही है यह निर्णय भी पड़ा है और ऐसा जाननेवाला यह ज्ञान सही ही है यह भी निर्णय पड़ा है, यह है स्वपरप्रकाशकताका अर्थ।

स्वपरप्रकाशकतामें अविनाभाव यदि स्वपरप्रकाशकतामेंसे एक चीज निकाल दो दूसरी चीज भी नहीं बनती। ज्ञान स्वनिर्णायक नहीं है केवल अर्थनिर्णायक है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि जिस ज्ञानने पदार्थका निर्णय किया है वह ज्ञान असमंजसमें है वह ज्ञान निर्णायक नहीं है कि यह ज्ञान सही है, तो जिस ज्ञानमें सहीपनका विश्वास नहीं है वह ज्ञान पदार्थका क्या निर्णय करेगा ? यदि अर्थ प्रकाशकता निकाल दो, केवल स्वप्रकाशकताका ही रखो तो वह स्व क्या चीज जिसकाकि ज्ञानने प्रकाश किया ? ज्ञानका स्वरूप ही नहीं बना ? ज्ञानका स्वरूप तो ज्ञेयाकार परिणमनसे बनता है। अब अर्थप्रकाश न होनेका अर्थ ही यह है कि यहाँ ज्ञेयाकार ग्रहण नहीं है, आकार नहीं बनता ज्योतिका। तो ज्ञानका स्वरूप ही नहीं रहा फिर वह स्वप्रकाशन कैसे ? ज्ञानमें ये दो पद्धति पड़ी हैं चाहे कोई समझ पाये या न समझ पाये, पर ज्ञान तो अपने ढङ्गसे प्रत्येक जीवमें काम करता ही है। मिथ्यादृष्टि जीव भी चाहे मोक्ष मार्गके विरुद्ध ज्ञान होनेसे अप्रमाण है लेकिन मिथ्यादृष्टि भी जिस जिस पदार्थको जानता है, पदार्थके जाननेके साथ उसके ज्ञानमें भी स्व प्रकाशकता पड़ी हुई है। तो यहाँ स्वका अर्थ आत्मा नहीं है। जो ज्ञान जान रहा है उस ज्ञानमें यह ज्ञान सही है ऐसा निर्णय होनेका नाम स्वप्रकाशकता है। यों ज्ञान स्व और अपूर्व अर्थका व्यवसायात्मक है वह प्रमाण है।

प्रमाणस्वरूपके विरुद्ध पक्ष स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मक ज्ञानको प्रमाण न कहकर जो इस मर्मसे अपरिचित हैं वे अन्य अन्य प्रकारसे पदार्थोंको प्रमाण कहा करते हैं। कोई कहता है वाह, हमारा प्रमाण यह दस्तावेज है ! किसीने पूछा कि तुम्हारा मकान है इसका प्रमाण क्या है ? तो वह रजिस्टर्ड पेपर निकालकर रख देता है लो साहब, हमारा यह प्रमाण है ! अरे, क्या वह कागज या वे अक्षर प्रमाण हैं ? जो उन अक्षरों द्वारा ज्ञान बना वह ज्ञान प्रमाण है ! लेकिन दुनिया तो उस दस्तावेजको प्रमाण मानती है। तो लोकरूढ़िसे कहीं परमार्थका निर्णय तो नहीं बनता, ऐसे ही दार्शनिक क्षेत्रमें किसीने किसीको प्रमाण कह दिया सर्व पदार्थ जुड़ गये वह प्रमाण है, इन्द्रिय पदार्थोंकी भिड़न्त हुई वह प्रमाण है, इन्द्रियोंका व्यापार हुआ वह प्रमाण है, तो किसीने कहा कि आत्माका व्यापार प्रमाण है, किन्तु आत्मा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अचेतन होता है। चेतनका समवाय होनेसे चेतन है, ऐसे अचेतन आत्माका अचेतन व्यापार प्रमाण है। ज्ञानको प्रमाण इस दार्शनिकने स्वीकार नहीं किया। थोड़ा बौद्ध दार्शनिक ज्ञानका समर्थन कर रहे हैं। सो वहाँ निर्विकल्प ज्ञानको प्रमाण कह दिया। वस्तुतः तो स्व और अपूर्व अर्थका व्यवसायात्मक ज्ञान ही प्रमाण है।

प्रमाणस्वरूपकी सर्व प्रमाणभेदोंमें घटितता--यह प्रमाण नाना भेदरूप है और उन सब भेदोंमें प्रमाणका लक्षण घटित होते रहना चाहिए, तब तो प्रमाण का सही रूप बनेगा। जैसे जीवका लक्षण है चैतन्यस्वरूप, तो जीवके जितने भी भेद किये जायें उन सब भेदोंमें जीवका स्वरूप मिलना ही चाहिए तब तो जीव कहा जाय, चाहे वह मुक्त जीव हो, चाहे निगोद जीव हो, चाहे कोई संसारी हो। ऐसे ही प्रमाणताका जो यह लक्षण है यह सब प्रमाणोंमें घटित होगा। चाहे संव्यवहार प्रत्यक्ष हो, चाहे स्मरण हो, तर्क हो, अनुमान हो, कोई सा भी ज्ञान हो सब ज्ञान, सब प्रमाण स्व और अपूर्व अर्थके व्यवसायात्मक होते हैं यह पूर्णयया घटित होगा। आगम ज्ञान के सम्बन्धमें भी यह समझना कि आगमके पोथी पत्रा इनको प्रमाण नहीं कहा। यह तो हमारा प्रमाणभूत आगम ज्ञानकी मूर्ति है। जो हम आगमज्ञान करते हैं या जिस आगम ज्ञानको गणधरोंने करानेका यत्न किया है, उसकी मूर्ति बना दी है यह। जैसे तीर्थङ्कर भगवानकी मूर्ति है इसी प्रकार आगम अक्षरविन्यासोंकी मूर्तिमें विराजमान है। आगमज्ञान भी ज्ञाता आत्माका परिणमन है। समस्त प्रमाण स्व और अपूर्व अर्थके व्यवसायात्मक ही होते हैं। कोई ज्ञान अर्थप्रतिभासरहित नहीं होता।

ज्ञानमें निर्विकल्पताकी साधनाका प्रयास--इस पर क्षणक्षय सिद्धान्त कहा जा रहा है कि कभी-कभी तो इन रूपादिक प्रत्यक्ष ज्ञानोंमें भी जब कि कुछ विकल्प न मच रहा हो उस समय रूपादिकका दर्शन भी तो निर्विकल्प समझमें आता है। इस समय सविकल्प ज्ञानमें ही जिसमें कि स्पष्टताकी प्रसिद्धि है उसमें ही निर्विकल्पताके झलककी सिद्धि की जा रही है। जैसे जब कभी कोई विकल्प नहीं होता और न कुछ जानकारीकी इच्छा हो तिसपर भी कोई चीज सामने आ जाय तो निर्विकल्परूपसे उसका रूप ज्ञात तो कर लिया जाता है, कैसे नहीं निर्विकल्पताकी प्रतीति होती है। हाँ नाम मनमें न आये कि यह गौ है या अमुक है ऐसी स्थितिमें भी तो स्पष्टज्ञान हो गया अर्थात् निर्विकल्पज्ञान होता है यह सिद्ध कर रहे हैं। किन्तु तथ्य यह है कि जो भी ज्ञान होते हैं वे सब सविकल्प होते हैं। कभी घोड़ाके स्वरूप का मनमें ध्यान किया जा रहा है या घोड़ा किसीका गुम गया उसकी चिन्तामें बैठे हैं, उसका ही सोच कर रहे हैं और सामनेसे निकल जाय गाय तो उसका प्रत्यक्ष हुआ न। तो इनका तो यह कहना है कि उस प्रत्यक्षमें विकल्प नहीं बना, किन्तु ऐसा नहीं है उस गायके प्रत्यक्षमें भी विकल्प बन गया अन्यथा जब घोड़ेका विकल्प दूर हुआ तो स्मरण हो जाता ना कि कुछ निकला था सो यह स्मरण नहीं होना चाहिये।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यद्यपि नाम, विशिष्ट रंग इनका स्मरण नहीं होता, लेकिन कुछ भी स्मरण होना यह विकल्प, प्रतीति, समस्त ज्ञान सविकल्प होता है, साकार होता है, व्यवसायात्मक होता है। निश्चयके कारण ही यह विकल्प कहा जा रहा है, प्रत्येक ज्ञान निश्चयात्मक होते हैं, अनिश्चयात्मक ज्ञान नहीं होते। तो यह मानना चाहिए कि स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय करने वाला ज्ञान ही प्रमाण है।

प्रामाण्यपरीक्षाका महत्त्व—यह दर्शनका, न्यायका ग्रन्थ है। इस ग्रंथमें कोई निर्णय करनेकी अनुपम कुञ्जी बतायी जायगी, उसके लिए यह एक भूमिका मात्र सी कही जा रही है। तो आप इतना ही निर्णय करें कि जिसकी भूमिकामें इतना दुर्गम तत्त्व कहा जा रहा है तो वह कुञ्जीरूप ज्ञान कितना अनुपम और विशाल होता होगा, जिस ज्ञानसे हम अपने पक्षका दृढ़ीकरण कर सकें और असत्य पक्षका खण्डन कर सकें उस ज्ञानकी परीक्षा ही न हो तो उसका दार्शनिक जीवन क्या है? निर्णायकज्ञानका निर्णय भी तो होना चाहिए कि कैसा होता है? उस ज्ञानकी इस सूत्रमें परीक्षा की जा रही है कि ज्ञान निश्चयात्मक ही होता है क्योंकि वह संशय, विपर्यय और अनध्यवसायका विरोधी है। जिसमें संशय नहीं, विपरीतता नहीं, अनध्यवसाय नहीं वह ज्ञान निश्चयात्मक होता है।

क्षणक्षयसिद्धान्तमें व स्याद्वादसिद्धान्तमें प्रमाणव्यवस्था—क्षणक्षय सिद्धान्तमें ऐसा माना गया है कि जितना यह सब जानना हो रहा है, जिसमें पदार्थों का ज्ञान होता है, यह चौकी है, दरी है, पुस्तक है, नीला है, पीला है, यह जो ज्ञान होता है वह मिथ्या ज्ञान हैं, अप्रमाण है, किन्तु एक ही समयमें जो कि पदार्थ उत्पन्न होता है और फिर नष्ट हो जाता है तो जिस कालमें पदार्थ उत्पन्न हुआ उस ही काल में पदार्थका जो ज्ञान होता है वह निर्विकल्प है, अर्थप्रतिभासरहित है, केवल अपने स्वरूपमात्र है। ऐसा जो निर्विकल्पज्ञान है वह सत्य है, प्रमाण है। जिसमें कुछ भी जाना तो वह ज्ञान है मिथ्या और जिसमें कुछ जानना नहीं आया किन्तु ज्ञान ही मात्र है वह है सच्चा। ऐसा क्षणिकवाद सिद्धान्तने कहा है, और स्याद्वादसिद्धान्तमें जितना भी जो कुछ ज्ञान है, पदार्थका जिसमें प्रतिभास है वह तो है प्रमाण और जहाँ पदार्थ का प्रतिभास नहीं है और सिर्फ एक ज्योति दर्शन है, वह है दर्शन। दर्शन न प्रमाण होता है न अप्रमाण होता है। ज्ञान, जो सम्यक् है वह प्रमाण है, जो मिथ्या है वह अप्रमाण है। तो क्षणिकवादियोंके इस मंतव्यपर कि अर्थप्रतिभासरहित ज्ञान प्रमाण है और अर्थप्रतिभासवाला ज्ञान अप्रमाण है, कुछ चर्चायें चल रही हैं।

प्रमाणभूत ज्ञानमें निराकारताके समर्थनका यत्न—चर्चा मुख्य यह है कि क्षणक्षयसिद्धान्तका यह निर्विकल्प ज्ञान जिसमें अर्थप्रतिभास नहीं होता वह तो किसी को प्रतीत ही नहीं होता। कौन जानता है ऐसे ज्ञानको कि उसे ज्ञान हुआ है या यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान है ? तो निर्विकल्प ज्ञानकी तो प्रतीति ही नहीं होती। इस समाधानपर क्षणिकवादी यह बात रख रहे हैं कि जिस किसी समय कोई विकल्प न हो रहा हो ऐसी स्थितिमें कोई बैठा है और सामनेसे गाय आदिक कोई पदार्थ गुजरे तो उसके रूपादिकका दर्शन तो हो गया, पर कुछ विकल्प नहीं उत्पन्न हुआ। तो निर्विकल्प रूपादिकका दर्शन तो प्रत्यक्षसे भी अनुभवमें आता है। जिस समय सारी चिन्ताएँ खतम हो जाती हैं और यह अन्तरात्मा विश्राममें रहता है तो चक्षुके द्वारा रूपादिक दिखते ही हैं। तो जैसे वहाँ कोई विकल्प नहीं है ऐसे ही निर्विकल्प ज्ञान हुआ करता है। कुछ भी पदार्थ अनुभवमें नहीं आता और फिर भी पदार्थका प्रतिभास होता है, इस कारण यह कहा कि निर्विकल्पज्ञानका तो किसीको प्रत्यय ही नहीं समझमें ही नहीं आता, यह बात ठीक नहीं है, आता है समझमें ऐसी क्षणिकवादने बात रखी है, उसके उत्तरमें यह कहा जा रहा है कि जैसे कोई मनुष्य बैठा है किसी दूसरी तरफ ख्याल है, मानो उदाहरणमें वह घोड़ेका विकल्प कर रहा है, घोड़ा यों होता है, मेरा घोड़ा कहाँ गया, कुछ ख्याल कर रहा और सामनेसे निकली गाय, तब गाय दिख तो गई, पर उस अश्वके विकल्पमें रहनेके कारण ज्यादा ध्यानसे गायको नहीं देखा। यद्यपि गौके दर्शनमें विशेष विकल्प नहीं हुआ, लेकिन आकार प्रकार जो देखा वह भी तो विकल्प है। विकल्परहित ज्ञान होता ही नहीं है। ज्ञान तो हो जाय और चीज न आये ज्ञानमें ऐसा भी कोई ज्ञान होता है क्या ? पर क्षणिकवादी मानते हैं कि समझमें कुछ चीज न आये और ज्ञान हो जाय, असली ज्ञान तो वही है और जहाँ कोई चीज समझमें आयी वह ज्ञान झूठा है, अप्रमाण है, किन्तु जैन सिद्धान्त यह कहता है कि ज्ञान ही वही कहलाता है कि जिसमें कुछ समझ तो आये वस्तुका ग्रहण तो हो।

प्रत्येक ज्ञानमें ज्ञेयाकारका प्रतिभास – क्षणिकवादियोंके वैसा माननेका कारण यही है कि उनका कहना है कि पदार्थ क्षण-क्षणमें नष्ट होता है। तो जिस समयमें पदार्थ है, उस समयमें तो पदार्थका ज्ञान हो नहीं सकता। वह तो क्षणभरको उत्पन्न हुआ, नष्ट हो गया, ज्ञान होगा उसके दूसरे समयमें जब उसका संस्कार बनेगा, उसका ख्याल रहेगा, इतनेमें तो कितना ही समय गुजर जाता है। तो जब समझ बनी तब पदार्थ नहीं रहा, जब पदार्थ है तब पदार्थमें समझ नहीं बन पाती इसकारण जितनी भी समझ है वह सब मिथ्या है क्योंकि वहाँ पदार्थ ही नहीं। ऐसे सिद्धान्त वालोंको कहा जा रहा है कि भले ही अश्वके विकल्पमें रहने वाले पुरुषको सामने गौ का दर्शन हुआ था, वह यद्यपि ज्यादा समझ नहीं पाया, कौन गौ है, किस रंगकी है, किसकी है, कुछ विकल्प नहीं हुआ लेकिन जिस समय अश्वचिन्ता खतम हुई, विकल्प दूर हुए तो फिर स्मरण आने लगता है कि कुछ निकला था। कुछ निकला था ऐसा प्रतिभास होना ही विकल्प है। तो जिस ज्ञानमें पदार्थका कुछ भी प्रतिभास हुआ, सामान्यसे हुआ, विशेषसे हुआ वह सब ज्ञान है। हाँ उस समय नाम रंग आदिक रूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से गाय नहीं देखा इसको तो स्याद्वाद भी मान रहा है कि ऐसा हो भी सकता है और फिर भी वह ज्ञान है। सारे ज्ञान किसी न किसी नामको सोच कर होते ही हों ऐसा नियम नहीं है। प्रमाण तो वह ज्ञान है जिसमें सँशय, विपर्यय, अनध्यवसाय न आये।

समारोपविरोधी ज्ञानमें प्रमाणता यह दर्शनशास्त्रका ग्रन्थ है, इसमें सर्वप्रथम यह बात बतायी है कि पहिले ज्ञानको तो समझ लो कि कौनसा ज्ञान सत्य होता है और कौनसा ज्ञान झूठा होता है। ज्ञानकी परख करायी है इस ग्रन्थमें। जिस ज्ञानमें संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय न हो वह ज्ञान प्रमाण है। जहाँ संशय उठ गया कि अमुक पदार्थ ऐसा है या ऐसा हैं वह ज्ञान निश्चयात्मक तो रहा नहीं ना, स्व और अपूर्व अर्थका ज्ञान करने वाला तो रहा नहीं। वहाँ तो संशय उठ रहा है। तो संशय ज्ञान अज्ञानतुल्य है और वह सत्य नहीं है। प्रायः आत्माके बारेमें विपर्यय ज्ञान रहता है सो तो कुछ और, जान रहे हैं कुछ, इसीके मायने तो उल्टा ज्ञान है। उल्टे ज्ञानमें यद्यपि उल्टा निश्चय बसा हुआ है मगर सही अर्थका निश्चय तो नहीं बसा इसकारण वह अप्रमाण है। है तो यह शरीर पुग्गल, अजीव और मानते हैं लोग जीव। जैसे किसी भी मनुष्यको अथवा कीड़ा मकोड़ाको देखकर यों कहते कि यह जीव है तो यही तो विरुद्ध ज्ञान है, जगतके जितने भी जीव हैं सब अत्यन्त जुदे हैं। किसीका किसीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है और फिर मानते हैं कि यह मेरा है, यह विपरीत ज्ञान ही तो हुआ। यह अप्रमाण है।

संशय विपर्यय अनध्यवसायमें अप्रामाण्य व अहित विपरीत ज्ञानसे जीवको जन्म मरणका क्लेश बढ़ता है। शरीर मेरा है, शरीर मैं हूँ, धन मेरा है, परिजन मेरे हैं। अरे है क्या मेरा। मेरा तो मात्र मेरा ज्ञानस्वरूप है, अन्य कुछ मेरा नहीं है। शरीरसे आत्मा जब निकल जाता है तो उस आत्माके साथ रहता क्या है? जो कुछ रहे आत्माके साथ वह तो आत्माका है और जो कुछ नहीं रहता वह आत्मा का नहीं है। सीधी सी बात है। सबको ही देखते हैं अनेक लोग मर जाते हैं, मरते ही हैं, मरना ही पड़ता है, ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसकी मृत्यु न आये। तो मरनेके बाद उसके साथ जाता क्या है सो बताओ। न शरीर जाय, न धन जाय, न कुटुम्ब जाय, उसके साथ जाता है उसका ज्ञान। और, रागद्वेषादिक विभाव भी जाते हैं। वासना संस्कार भी जाते हैं, लेकिन कोई सा भी रागद्वेष, कोई सी भी वासना इस जीवमें सदा काल नहीं रहती, अतएव रागद्वेष कषाय तक भी जीवके नहीं है। जीव का तो मात्र ज्ञानस्वरूप है तो जो जीव नहीं है उसे माना कि यह जीव है, यह विपरीत ज्ञान है। इसमें यद्यपि निश्चय पड़ा हुआ है, शंका नही है। मिथ्यादृष्टिको भी अपने ज्ञानमें शंका नहीं रहती लेकिन जो जान रहे हैं वह पदार्थ तो नहीं है इसकारण झूठ है। तो संशयज्ञान अप्रमाण है, विपरीत ज्ञान अप्रमाण है। और, अनध्यवसाय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी कैसा अनिर्णायिक है कि जिसके सम्बन्धमें कुछ तो प्रतिभास हो मगर उसका निश्चय करनेकी आकांक्षा तक भी न उत्पन्न हो। ऐसा जो अनिर्णयात्मक और कुछ भी निर्णयके क्षेत्रमें न चलने वाला ज्ञान है वह अनध्यवसाय है।

जगतके जीवोंमें अनध्यवसायकी प्रचुरता—जगतके जीव आत्माके स्वरूपके बारेमें अनध्यवसाय वाले अधिक हैं। इससे कम विपरीत ज्ञान वाले हैं और उससे कम संशय ज्ञान वाले हैं और यथार्थ ज्ञान वाले तो अत्यन्त बिरले हैं। कीड़ा मकोड़ा निगोदिया अनेक जीव अनध्यवसायमें हैं। उन्हें आत्माके बारेमें कुछ भी पता नहीं, और शरीर तकमें भी यह मैं हूं ऐसा भी ज्ञान करनेकी बुद्धि नहीं है। कीड़ा मकोड़ामें और जिन्हें कुछ मन मिला ऐसे जीव विपर्ययज्ञानमें बढ़े चढ़े हैं। जो शरीर मिला उसे ही माना कि यह मैं जीव हूं और इन संज्ञी जीवोंमें कोई समझदार जीव हो, जो आत्माके बारेमें कुछ निर्णय करनेका भी ख्याल रखता है तो वह संशयज्ञानमें पड़ जाता है। जीव ऐसा है या ऐसा जीव भौतिक है या वास्तविक। तो संशयज्ञान वाले और कम हैं। वस्तुका यथार्थस्वरूप समझमें लायें ऐसे जीव तो अत्यन्त बिरले हैं

दार्शनिकोंका आत्महितके लिये प्रयत्न जितने भी ये दर्शन हैं इन सब दर्शनोंने आत्मकल्याणके लिए अपना उपाय बनाया है। किसीने ऐसा ही दर्शन बना लिया कि आत्मा कोई चीज नहीं है। जब तक आत्मा, आत्माकी धुन बनेगी तब तक संसारमें रुलते रहेंगे और जिस दिन सही समझमें आ जायगा कि आत्मा तो एक भूत हैं, भ्रम है, आत्मा कुछ भी नहीं है ऐसा समझमें आयगा उस दिन सम्यग्ज्ञान होगा और निर्वाण होगा। उन्होंने यही आत्माके निर्णयमें सही उपाय बताया। तो किसीने यह उपाय बताया कि आत्मा तो वास्तवमें है किन्तु वह एक क्षणको ही उत्पन्न होता है, बादमें नहीं रहता। तो एक देहमें जो मैं वही हूं। मैं वही हूं ऐसा आत्माका जो भ्रम बना रहता है यह संसारमें रुलनेका कारण है। और, जिस क्षण यह विदित हो जायगा कि प्रत्येक आत्मा एक क्षणको ही रहता है और इस देहमें आत्माके बाद आत्मा आत्मा ऐसे निरन्तर प्रतिसमय उत्पन्न होते रहते हैं, तो जिस संतानके लगारमें आत्मा–आत्मा उत्पन्न होते चले गए वहाँ जो आत्मा यह मानता है मैं वहीं हूं, मैं वही हूं वह मिथ्याज्ञानी है और इस कारणसे उसे सुख दुःख और–और मूर्छा पाप आदिक लग जाया करते हैं और संसारमें रुलते हैं जब यह समझमें आयगा कि मैं नहीं हूं यह, मैं का भाव ही न रहेगा जब मैं हुआ था तब मैं के विकल्पका समय ही न था। वह तो मेरी उत्पत्तिका टाइम था। जब मैं का विकल्प होता है, जब वह मैं रहता नहीं तो मैं–मैं कहना सब झूठ है। मैं नामकी कोई वस्तु नहीं है। इस ढंगसे जो एक क्षणमें उत्पन्न होने वाले आत्माका ग्रहण होता है वह निर्विकल्प ज्ञान है और वह निर्विकल्पज्ञान प्रमाण है। ऐसा क्षणक्षय सिद्धान्तमें प्रमाणके सम्बन्धमें अपना सिद्धान्त रखा जा रहा है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनिश्चयात्मक ज्ञानमें श्रेयका प्रतिषेध—आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि प्रमाणता आती है संशय विपर्यय, अनध्यवसायज्ञान न होनेसे। कुछ न कुछ निश्चय हो उसकी प्रमाणता आती है। जो अनिश्चयात्मक ज्ञान है उसमें प्रमाणता नहीं आ सकती। क्षणक्षयसिद्धान्तमें जो परमार्थभूत ज्ञान बताया है वह अनिश्चयात्मक है। जैसे चलते जा रहे हैं और पैरमें तृण आदिक छू जायें, छूते रहते हैं, चलते जा रहे हैं, पैरके नीचे कोई कंकड़ पता कुछ न कुछ आते रहते हैं पर उनका कौन निश्चय करता है। चलते जाते हैं, उसकी ओर निश्चय करनेकी बुद्धि नहीं लगाते हैं। पैरके नीचे क्या चीज आयी थी उसे कौन सोचता है ? तो जैसे चलते हुए पुरुषके पैरमें तृणस्पर्श हो जाता है किन्तु वह पदार्थ है क्या ? उसके बारेमें कुछ निश्चय ही नहीं हो रहा। ऐसे ही जो निर्विकल्पज्ञान है, जिसमें पदार्थका कुछ भी प्रतिभास नहीं है वह ज्ञान क्या प्रमाणके लायक है ? प्रमाण तो वह होता है जिसमें निश्चय पड़ा हुआ है।

निश्चयहेतुताके कारण निर्विकल्प ज्ञानके प्रमाण होनेका पक्ष—इसपर क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि यद्यपि निर्विकल्पज्ञानमें निश्चय तो नहीं पड़ा है किन्तु निश्चयका कारण है। उसके बाद जो सविकल्प ज्ञान होता हैं, जिसमें पदार्थ प्रतिभास है, जो पदार्थ उत्पन्न होते ही नष्ट हो गया उस पदार्थका इसमें प्रतिभास हो रहा है। तो उस पदार्थका कारण तो निर्विकल्प ज्ञान हुआ। न निर्विकल्प ज्ञान होता तो प्रतिभास कैसे बनता ? इसको स्पष्ट समझना हो तो जैन सिद्धान्तकी एक घटना ले लो। सबसे पहिले दर्शन होता है, उसके बाद ज्ञान होता है छद्मस्थ अवस्थामें, यह बात अनेक सूत्रोंमें बतायी गई है कि दर्शन पूर्वक ज्ञान होता है पहिले हुआ पदार्थका आकार प्रकार रंग रूप न ग्रहण करके पदार्थका सामान्य रूप से प्रतिभास, वह तो है दर्शन, और उसके बाद जो पदार्थका आकार समझमें आया वह है ज्ञान। तो यद्यपि दर्शन प्रमाण नहीं है, न प्रमाण है अप्रमाण। प्रमाणभूत जो ज्ञान बनेगा उस ज्ञान बननेका कारण तो है दर्शन। दर्शन न होता तो ज्ञान कैसे बनता। तो दर्शन यद्यपि निश्चयात्मक नहीं है लेकिन निश्चयात्मक ज्ञानका कारण तो होता है। इस ही तरह क्षणिकवादी कह रहे हैं कि यद्यपि निर्विकल्प ज्ञान निश्चयात्मक नहीं है लेकिन निश्चयात्मक सविकल्प ज्ञानका कारण तो है इस कारणसे निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण मानना चाहिये।

निश्चय हेतुताके कारण निर्विकल्प ज्ञानमें प्रमाणताका प्रतिषेध—आचार्यदेव कहते हैं कि यों निर्विकल्प ज्ञानके प्रमाणकी बात ठीक नहीं है। यदि ऐसी बात रखेंगे कि जो निश्चयका कारणभूत ज्ञान है वह प्रमाण होता है तो संशय ज्ञान भी प्रमाण हो जाना चाहिए। कभी–कभी किसी–किसी निश्चयके पहिले संशयज्ञान रहता है। यह सीप है या चाँदी ? इस प्रकारका संशयज्ञान हो रहा हो उस ही सिलसिलेमें यह ज्ञान हो जाता है कि यह सीप है, चाँदी नहीं है। तो यह जो यथार्थ ज्ञान हुआ है इस ज्ञानका कारण किसी न किसी रूपमें संशयज्ञान तो हुआ। उस संशय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानके सिलसिलेपर ही ऐसा सच्चा ज्ञान बना तो निश्चयका कारणभूत ज्ञान प्रमाण है ऐसी बात रखेंगे तो संशय आदिक ज्ञान भी प्रमाण बन जायेंगे इस आपत्तिसे बचनेके लिये यदि कहें कि संशय ज्ञान स्वलक्षणका अध्यवसायी नहीं है अर्थात् अपने स्वरूप का निश्चय करने वाला नहीं है। तो नील आदिक विकल्पोंका भी यह हाल है, वे भी स्वलक्षणका अध्यवसाय नहीं करते। प्रयोजन यह है कि क्षणिकवादी ऐसे ज्ञानको सही कहते है जिस ज्ञानमें किसी पदार्थका आकार रंग प्रतिभास न होता हो। और जब प्रतिभास होने लगता तो वह ज्ञान अप्रमाण हो जाता है। इतनेपर भी निर्विकल्प ज्ञानको तो माना है स्पष्ट और जिसमें अर्थ प्रतिभास होता है उस ज्ञानको माना है अस्पष्ट।

स्वचर्चा देखिये यह सब अपने ज्ञानकी चर्चा चल रही है। सब जीवोंमें ज्ञान बसा है। वह ज्ञान किस ढंगसे काम करता है इसका निर्णय बड़े बड़े ऋषी संतों ने किया है। जैन ऋषियोंने तो यह बात रखी है कि ज्ञान स्वपर प्रकाशक पद्धतिसे कार्य करता है। ज्ञान जब बनता है तो अपने आपका भी प्रकाश करता है कि मैं ज्ञान सही हूँ और उस हीके साथ पर पदार्थको भी प्रकाशित करता है कि यह अमुक यथार्थ है। किन्तु क्षणक्षय सिद्धान्तमें यह कहा है कि जो ज्ञान केवल अपने स्वरूपका, सत्ताका आत्म लाभ भर करे, किन्तु उसमें प्रतिभास न आये वह तो प्रमाण है और जहाँ प्रतिभास आये सो ही ज्ञान अप्रमाण हो गया इस सिद्धान्तके फलमें बहुत अन्तर आ गया। जिसे हम जीव जीव कहते हैं वह जीव कुछ नहीं है, भ्रम है वह तो मूल आधार है बौद्धोंका। जीव नामकी कोई चीज नहीं है और जो है भी जीव नामकी चीज तो वह भी तो एक समयमें उत्पन्न हुआ और नष्ट हो गया। उसके विरुद्ध यदि अपनेको जीव जीव यों मानते रहेंगे तो संसारमें रुलेंगे, यह तो सिद्धान्त बन जाता है निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण माननेपर नास्तिकवादका और सविकल्पज्ञान प्रमाण माननेसे जिसमें युक्ति है, अर्थका आकार प्रकार है उसे प्रमाण माननेसे यह सिद्धान्त बन जाता है कि मैं जीव हूँ, सदा रहने वाला हूँ, प्रति समय परिणमता रहता हूँ वह परिणमन यदि मिथ्याज्ञानके कालमें है तो वह मोक्षमार्गरूप है ऐसा निर्णय बनता है।

स्वहित निर्णय—इसमें शिक्षाकी बात यह लेना है कि हम अपने बारेमें यह निर्णय बनाएं कि मैं सबसे न्यारा हूं, ज्ञान, स्वरूप हूं और यह मैं ज्ञान स्वरूप सदा रहने वाला हूं। इसका यद्यपि प्रति समयमें परिणमन होता है तो वह परिणमन ऐसा सही बनायें कि जिसमें वस्तुका पूरा पूरा निर्णय हो, विपरीत ज्ञान न हो। हो कुछ, जाने कुछ, अथवा संशय हो, ऐसे ज्ञानसे आत्माका कल्याण नहीं है। अपने आपका दृढ़ निर्णय करें कि मैं शाश्वत हूं, सदा रहने वाला हूं और समस्त पर पदार्थोंसे कषायोंसे न्यारा हूँ। मुझे अपनी रक्षा करना है, ऐसा ज्ञान प्रकाश करना है जिसमें मैं आत्मा अपने स्वरूपमें मग्न हो जाऊं और समस्त पर पदार्थोंसे उपेक्षा हो जाय, उन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की ममताका त्याग हो। मैं अपने आपमें गुप्त होऊंगा तभी मेरा कल्याण है।

निराकार ज्ञानमें प्रमाणत्वका अनवकाश क्षणिकवाद सिद्धान्तमें स्व लक्षणके अध्यवसायी निर्विकल्प ज्ञानको प्रमाण कहते है, और जहाँ पद थंका प्रतिभास होता है, आकार प्रतिविम्बित होता है उसको विकल्प ज्ञान कहते है और अप्रमाण कहते हैं। इसपर उनसे पूछा गया कि निर्विकल्प ज्ञान तो अनिश्चयात्मक है. निश्चयात्मक तो सविकल्प ज्ञान है, जिसमें आकार प्रकार विशेषता सभी ज्ञात होते हैं। तो अनिश्चयात्मक ज्ञानमें प्रमाणता नहीं आ सकती। यदि अनिश्चयात्मक ज्ञानमें प्रमाणता आ जाय तो अनध्यवसाय ज्ञान जिसमें कुछ भी निर्णय न हो वह भी प्रमाण हो जायगा इसपर तर्क रखा कि निर्विकल्प ज्ञान स्वयं निश्चयरूप नहीं है, पर निश्चयात्मक विकल्प ज्ञानका कारण तो है। पहिले दर्शन होगा तब तो विकल्प बनेगा। पहिले निर्विकल्प ज्ञान होगा तब आकार प्रकार प्रतिभासमें आयगा। यों सविकल्प ज्ञानका निश्चयात्मक ज्ञानका कारण होनेसे निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण हो जायगा। तो इसके उत्तरमें कहा गया है कि इस तरह तो संशय आदिक विकल्पोंको उत्पन्न करने वाला दर्शन भी प्रमाण बन जायगा, अथवा संशय आदिक ज्ञान प्रमाण बन जायेंगे। संशय आदिक ज्ञानके सिलसिलेमें भी तो धीरे धीरे पदार्थका निश्चय हो जाता है। तो जो निश्चयका कारण है वह प्रमाण मानोगे तो संशयको उत्पन्न करने वाला दर्शन भी प्रमाण बनेगा। यदि यह कहो कि संशय आदिक विकल्पोंमें स्व लक्षणका अध्यवसाय नहीं है अर्थात् निर्विकल्प ज्ञान तो किसी पदार्थको जानता नहीं तब किसका प्रतिभास करता है ऐसा प्रश्न होनेपर यही कह सकते कि वह अपने लक्षणका प्रतिभास करता है। तो जो अपने लक्षणका प्रतिभास करे वह प्रमाण है, पर विकल्प ज्ञानमें स्व लक्षणका प्रतिभास नहीं है इसलिये प्रमाण न होगा। तो कहते हैं कि यही बात अन्य ज्ञानोंमें भी है। वे भी अपने लक्षणका प्रतिभास नहीं करते तो वे भी प्रमाण न होंगे।

क्षणक्षय सिद्धान्तमें निर्विकल्प ज्ञानसे वस्तुका अनिर्भास व सविकल्प ज्ञानसे अवस्तुका निर्भास यहाँ ज्ञानकी चर्चा चल रही है कि ज्ञानोंमें वास्तविक कौनसा ज्ञान है। इस प्रसङ्गमें क्षणक्षय सिद्धान्तमें बतलाते हैं कि चूंकि पदार्थ क्षण क्षणमें नष्ट होते हैं तो जिस क्षणमें पदार्थ हुआ उस ही क्षणमें उसका ज्ञान हो तो वह सही है, और ऐसा ज्ञान निर्विकल्प होता है। और, जब पदार्थका आकार समझमें आता उस समय पदार्थ रहता नहीं अतएव अवस्तुको जाना; सविकल्प ज्ञानने। इस कारण प्रमाण नहीं है। जैन सिद्धान्तके अनुसार तो तत्त्व यह है कि लोकमें प्रत्येक अखण्ड आत्मा है और वह प्रतिभास स्वरूप है। और चूंकि सभी पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होते हैं तो यह प्रतिभास सामान्य रूप है, विशेषरूप है। जो सामान्यरूप प्रतिभास है वह तो दर्शन है और जो विशेषरूप प्रतिभास है वह ज्ञान है। आत्मा दर्शन ज्ञान स्वरूप है। दर्शनमें प्रमाण और अप्रमाणकी व्यवस्था नहीं है। ज्ञानमें जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समीचीन है वह प्रमाण है और जो असमीचीन है वह अप्रमाण है। इसके विपक्षमें क्षणिकवादी यह बताते हैं कि आत्मा ही कुछ चीज नहीं है। जो एक एक समयका ज्ञान है वही एक एक आत्मा है। आत्मा कोई स्थायी तत्त्व हो जिसमें ज्ञान उत्पन्न होता रहता हो ऐसा कुछ नहीं है। सभी पदार्थ क्षणिक होते हैं क्योंकि उनकी सत्ता है और वह सत् भी एक समयमात्र है। तो एक क्षणका जो ज्ञान होता है वह आत्मा है और वही प्रमाण है। अब एक क्षणका जो ज्ञान होगा उस ज्ञानमें पदार्थ नहीं आते समझमें, किन्तु ज्ञानका लक्षण ही रहता है। ऐसे निर्विकल्प ज्ञानको ही प्रमाण कहते हैं, किन्तु प्रमाण वह ज्ञान होता है जो ज्ञान स्व और अपूर्व अर्थका प्रकाश करता है। अपने स्वरूपको जाने और पदार्थ को जाने वही वास्तविक ज्ञान है। निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण नहीं है। यहां निर्विकल्पका अर्थ है जहाँ कुछ समझमें नहीं आया, किसी पदार्थ का रूप अवस्था आकार कुछ भी बात प्रतिभासमें न हो और केवल एक ज्ञान रहे उसे निर्विकल्प ज्ञान कहते हैं। तो ऐसा निर्विकल्प ज्ञान जब कुछ जानकारी ही नहीं करता है तो वह प्रमाण कैसे ? जानकारीका नाम है प्रमाण। जब कुछ प्रतिभास भी नहीं होता पदार्थका तो प्रमाण कैसे ?

निर्विकल्प ज्ञानमें विकल्पोत्पादकताका अभाव—यह निर्विकल्प ज्ञान विकल्पको उत्पन्न करदे अर्थात् जानकारीके ज्ञानको बनादे यह भी सम्भव नहीं, क्योंकि खुद अविकल्प है। जो स्वयं निर्विकल्प है वह विकल्पको कैसे उत्पन्न करे ? अर्थात् जो स्वयं पदार्थकी जानकारीसे रहित है, केवल स्वलक्षणमात्र है वह पदार्थकी जानकारी को कैसे उत्पन्न करे। विकल्प उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य होना और स्वयं निर्विकल्प होना इन दोका तो परस्पर विरोध है। यदि यह कहो कि विकल्पकी वासनाकी अपेक्षा रखकर वह निर्विकल्प ज्ञान विकल्पको उत्पन्न करता है अर्थात् अर्थप्रतिभास-रहित ज्ञान विकल्पकी वासनाके सहारेसे अर्थप्रतिभासको उत्पन्न करता है सो कहते हैं कि स्वरूपतः तो वह निर्विकल्प ज्ञान भी अर्थ प्रतिभास नहीं कर रहा और ये पदार्थ भी प्रतिभास नहीं करते तो सीधा इन पदार्थोंको ही क्यों न मान लीजिये कि ये जानकारी पैदा कर देते हैं। यदि यह कहो कि आत्मामें पहिले एकनाममात्रका ज्ञान हुआ, और फिर वह असली जानकारीको उत्पन्न करता तो सीधा ही यही कहदो ना कि ये पदार्थ ही जानकारीको उत्पन्न कर रहे हैं। यदि ऐसा यह कहो कि जो पदार्थ स्वयं अज्ञात है वह कैसे जानकारी पैदा करे ? तो तुम्हारा निर्विकल्प ज्ञान भी तो अज्ञात है, वह कैसे विकल्प उत्पन्न कर देगा ? यदि यह कहो कि निर्विकल्प ज्ञानमें नाम तो ज्ञान पड़ा हुआ है, अनुभूति तो उसका स्वरूप है इस कारण विकल्प पैदा कर देगा। और, ये पदार्थ अनुभव कुछ नहीं करते इसलिये ये जानकारी पैदा नहीं करते। यों अनुभवमात्रसे यदि विकल्प पैदा हो जायें तो क्षणक्षय आदिक जो ज्ञान होते हैं उनमें भी जानकारी सीधी बन जाना चाहिए। तो ऐसा निर्विकल्प ज्ञान जो केवल कल्पनाकी चीज है, जिसमें जानकारी कुछ नहीं बसी हुई है वह प्रमाण नहीं है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किन्तु जिसमें पदार्थ प्रतिभासमें आते हैं स्वयं भी समझमें आते हैं ऐसा ज्ञान यह प्रमाणभूत होता है।

समस्त ज्ञानोंमें स्वपरप्रकाशकता—ज्ञान ५ प्रकारके माने गए हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यज्ञान और केवलज्ञान। उनमेंसे मतिज्ञान और श्रुत ज्ञान तो परोक्ष है अवधिज्ञान, मन: पर्ययज्ञान, केवलज्ञान प्रत्यक्ष हैं। जो प्रत्यक्ष है वे तो प्रमाणभूत हैं ही। उनकी चर्चा न करके परोक्ष जो मतिश्रुत है उसमें प्रमाणपने की बात इस समय कीजियेगा। कौन सा मतिज्ञान प्रमाण है और कौन सा अप्रमाण, कौन सा श्रुतज्ञान प्रमाण है और कौन सा अप्रमाण? इसकी चर्चा बनाइये। कोई भी मतिज्ञान हो या श्रुतज्ञान हो, उसमें यह बात पड़ी हुई है कि वह ज्ञान अपनेको भी जानता है और परपदार्थको भी जानता है। चाहे वह इन्द्रियकी आधीनतामें उत्पन्न हुआ हो और चाहे स्वतन्त्रतासे उत्पन्न हुआ हो पर ज्ञानकी यह प्रकृति है कि वह खुदका भी ज्ञान करे और अन्य पदार्थका भी ज्ञान करे। इसी कारण ज्ञानसे समस्त जगतकी व्यवस्था रहती है। सब द्रव्योंमें आत्माको श्रेष्ठ माना है, उसका कारण यह है कि सर्व पदार्थोंको जानने वाला एक आत्मा है। कल्पना करो कि सब कुछ तो होता, पुद्गल भी सब होते, धर्म, अधर्म, आकाश, काल भी होते, एक जीव द्रव्य भर न होता तो यह है, यह कैसे सिद्ध होता? कोई ज्ञाता पदार्थ है उसके कारण ही तो सारी व्यवस्था है। जीव द्रव्य न होता तो फिर कोई व्यवस्था न हो सकती थी और उस जीव द्रव्यमें भी सारभूत तत्त्व है अपना स्वरूप।

जीवकी बरबादीके साधन मोह और कषाय—इस जीवमें कर्मोदयसे, उपाधिके वशसे जो एक विकार आया है, मोह जगना, कषाय जगना, यह तो जीवकी बरबादीके लिए है। मोही जीव तो मोह कर करके ही दुःखी होते रहते हैं और उसमें ही अपनी चतुराई समझते रहते हैं। इस जीवके क्लेशका कारण मोह है यह खूब निर्णय करके निरख लो। जिन सचेतन जीवोंसे मोह करते हैं वे भी तो इस संसारमें यत्र तत्र भटकने वाले मोही प्राणी हैं। वे जीव क्या लगते हैं तुम्हारे? उन जीवों के मोह करनेसे कौनसा आत्माका सुधार शान्ति उत्पन्न हो जाती है? मोहमें मनुष्य शान्ति समझता है, तृष्णामें परिग्रहमें, धनसंचयकी धुनमें मनुष्य शान्ति समझता है मगर सब अशान्ति इसी धुनमें बसी हुई है। तब यह आत्मा अकेला ही उत्पन्न होता और अकेला ही मरता है, साथमें कुछ भी नहीं आता जाता। तो जरा सी जिन्दगीमें एक परिग्रह संचयकी धुन बनाकर अपने आपको एक वेदना ज्वालामें जलाते-भुनाते रहना यह कौन सी बुद्धिमानी है?

जैनशासनका परम शरण—सबसे बड़ा शरण तो जिनेन्द्रदेवका शासन है जिसकी शरणमें रहकर, जिसकी चर्चा सुनकर हम आप अपनी आकुलतायें दूर किया करते हैं। उस शासनसे लाभ लेना चाहिए। मनुष्य जीवन पानेका लाभ यही है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्वोत्कृष्ट दुर्लभ अहिंसामय रत्नके आधारपर निर्भर यह जैन शासन मिला है तो इस का अधिकसे अधिक उपयोग करें अपनी तृष्णा लगायें तो जैन शासनमें लगायें, गर्व उत्पन्न होता है तो गर्वके वज य गौरव इस शासनमें उत्पन्न हो, यह मैं आत्मा आकाशवत् निर्लेप ज्ञानस्वरूपके कारण समस्त लोकालोकको जाननेकी सामर्थ्य रखने वाला हूं स्वयं शुद्ध आनन्दस्वरूप हूँ। इस मुझ ऐसे महाप्रभुके लिए, इन तुच्छ भोग उपभोग विकल्प रागद्वेषकी कलुषतासे क्या प्रयोजन। मैं अपने आपमें बसूँ और अपने स्वरूपका अनुभव करके अपनेको अलौकिक अनुपम अनुभवसम्पन्न बनाऊँ ऐसा गौरव होना चाहिए। क्रोध जगता है तो अपने रागद्वेष मोहपर क्रोध करो। मैं विकल्प ये व्यर्थकी ममता, ये व्यर्थकी तृष्णाके भाव जिनसे मेरा कुछ भी लाभ नहीं है, जिनकी ज्वालामें मैं निरन्तर जलता भुनता रहता हूं, ये विकार ही मेरे शत्रु हैं, ये विकार दूर हों, ऐसा क्रोध कीजिए अपने आपके विकारभावोंमें।

ज्ञानसे ही अपना पूरा पड़नेके निर्णयका अनुरोध ये मोह ममता भाव भैया इनको क्या उपमा दी जाय। जगतमें सबसे अधिक अनर्थ करने वाला यह मोहभाव है। दुनियामें अनेक आये, और चले गए, उनका कुछ नाम निशान भी नहीं है। जिन पुरुषोंकी चर्चायें सुननेमें आती हैं उन चर्चावोंसे भी उनके आत्माको क्या लाभ? उनके आत्माको तो वही लाभ है जो उन्होंने धर्मपालन किया था। यह संसार असार है, इनमेंसे कुछ भी समागमोंमें मोह रहेगा तो उसका फल केवल क्लेश ही रहेगा। ऐसा उपाय बनाओ जिससे उपयोग विशुद्ध रहा करे। हमारा आपका और कोई साथी नहीं है। सच्चा साथी है अपना उपयोग निर्मल रहे बस यह भाव। वह उपाय कीजिए। अपने जीवनमें जब तक आप यह दृढ़ निर्णय न कर लेंगे कि हमारा धनसे कुछ पूरा नहीं पड़ता हमारा पूरा तो हमारे ज्ञानसे ही पड़ेगा, जब तक आप यह पूर्ण निर्णय नहीं बना लेते तब तक शान्तिकी झलक आ नहीं सकती। हमारा ज्ञान अविकारी बनना चाहिए जिसमें पर पदार्थोंकी उपेक्षा जगे, अन्यथा सोचिये फिर किसी भी पर पदार्थका ध्यान कर–करके उससे लाभ क्या मिलता? वैभव तो पूर्वकृत धर्मके प्रसादसे आ जाते हैं। तो धर्मकी रक्षा करना चाहिए। सर्व अभीष्ट चीजोंकी सिद्धिके लिए धर्मका पालन करना चाहिए, न कि धर्मको भूलकर तृष्णामें बहना चाहिए। जब तक सम्यग्ज्ञान नहीं जगता तब तक संतोष नहीं आता, तब तक जीवन जीवन नहीं कहलाता। तो ये सब बातें सम्यग्ज्ञानके प्रसादसे उत्पन्न होती हैं। अतः अधिकसे अधिक शरीरका श्रम, अधिकसे अधिक वचनोंका प्रयोग और अधिकसे अधिक धनका व्यय जिसमें हमें ज्ञान मिले, ज्ञानमें उपयोग रहे उसमें होना चाहिए। ज्ञान ही वास्तविक शरण है, अन्य कुछ शरण हैं ही नहीं।

मोहकी मोहिनी धूल—कैसा मोहका माहात्म्य है कि जिस मोहभावके कारण दुःखी होते हैं, बड़े–बड़े संकट आते हैं, चित्त बेचैन हो जाता है उस ही मोहमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह जीव राजी रहता है। यों समझिये जैसे विष्ठाका कीड़ा विष्ठामें ही राजी रहता है इसी तरह मोहका कीड़ा मोहमें राजी रहता है। मोह करके दुःख उठाते रहते हैं फिर भी बैराग्य नहीं उत्पन्न किया जाता तो इसका कुफल भोगेगा कौन ? कभी कुछ समयको सांसारिक वातावरणके कारण कोई बड़ी चोट लग जाय तो अल्प कालके लिए विचार बन जाता है कि अब मुझे किसीसे कुछ प्रयोजन नहीं, मैं तो सबसे न्यारा ही रहूंगा। लेकिन कुछ समय बाद फिर वहींकी वही धुन बन जाती है। मोहसे बढ-कर जीवका कोई दुश्मन नहीं है। यदि अज्ञान है, मोह है तो कहीं चले जावो वहाँ ही क्लेश है। अज्ञानी जीव चाहे घरमें हो, चाहे दूकानमें हो, चाहे मन्दिरमें हो, चाहे किसी भी जगह हो सर्वत्र दुःखीं रहता है, क्योंकि उपादान तो मोहका पड़ा हुआ है। तो मोहभावके अनुसार ही तो वह अपनी परिणति बनायेगा। कहीं भी रहे, मोह हैं अतएव सर्वत्र दुःखी है यह जीव। कैसी भी परिस्थिति मिले, करोड़ोंका भी धन मिले लेकिन मोह है तो वहाँ भी दूःखी रहता है, चैन नही मिलती। अतएव ऐसा निर्णय बनायें कि सम्यग्दर्शन उत्पन्न करके मोहका विनाश करना है। यही एक कार्य हैं शान्ति पानेके लिए। शान्ति प्राप्त करनेका और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

आत्महितकी शक्यता भैया ! आत्महितकी अभीष्ट बातें, चाहें तो सब बन सकती हैं। किसी भी प्रकारका कष्ट न हो ऐसा भी आप उपयोग बना सकते हैं, गृहस्थीमें भी रहकर अथवा गृहस्थी त्यागकर साधु पदवीमें भी कष्टरहित अपना प्रोग्राम जहाँ चाहे बना सकते हो। कौनसा कष्ट है बतलावो ? गृहस्थावस्थामें भी रहकर कष्ट सब मान रहे हैं पर कष्ट कुछ भी नहीं है। केवल एक मोह बढ़ाया, अज्ञान बढ़ाया, लालसा रखी, तृष्णा बसी उसका दुःख है। कोई प्रश्न कर सकता है कि किसीकी तृष्णा न करें तो काम कैसे चले ? तो पहिले तो यह बतावो कि धन क्या तृष्णा करनेसे आया करता है ? ज्ञान नहीं है इसलिए तृष्णा जगतो है, और फिर कितना धन होनेपर गृहस्थी अच्छी तरह चलती है इसका किसीने कुछ प्रमाण बताया है क्या आज तक ? यह तो सब अपने भावोंकी बात है। जिस किसी भी परिस्थितिमें अपना काम निभा सकते हैं। तृष्णा करें केवल धर्मपालनके लिए ही तब जीवन वास्तविक जीवन है। ऐसा भाव हम सब अपना बना सकते हैं और ऐसा प्रयोग कर भी सकते हैं मोह और कषाय ये ही जीवको दुःखके देने वाले हैं अन्य कोई वैरी नहीं है। वह मिटेगा सम्यग्ज्ञानसे। उस सम्यग्ज्ञानकी ही दर्शनशास्त्रमें चर्चा की जा रही है कि ज्ञानका असली स्वरूप क्या है और वह ज्ञान किमात्मक हो तो हितकी प्राप्ति कराये और अहितका परिहार कराये। यों हितके अर्थ अपने आपके भीतरकी बातको जानना अत्यन्त आवश्यक है। में क्या हूं, किस स्वरूप हूँ, मेरेमें क्या परिणमन होता है। अपने अस्तित्त्वका पूरा भान करे तो उसे हितकी प्राप्ति होती है। सबसे न्यारा ज्ञानमात्र यह मैं अंतस्तत्त्व हूँ, उसका दर्शन हो जाय उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। और जिसे सम्यग्दर्शन हो वह नियमसे संसारके संकटोंको समाप्त कर देगा। अतः

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उद्यम करना चाहिए सम्यग्ज्ञानके उपार्जनका।

प्रमाणभूत ज्ञानकी परिस्थिति— वस्तुके स्वरूपका जिस ज्ञानसे निर्णय होता है उस ज्ञानमें यह निर्णय बना लेना कि ऐसा ज्ञान तो ठीक होता है और ऐसा ज्ञान असत्य होता है, तब फिर दर्शन शास्त्रमें वस्तुके स्वरूप जाननेका अवसर मिलता है। इस कारणसे सबसे पहिले अपने ज्ञानको ठीक करें कि कौनसा ज्ञान प्रमाण होता है। जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराने वाला हो, जो ज्ञान खुदको भी जानता हो कि मैं बिल्कुल सही हूं और अन्य पदार्थोंका भी ज्ञान कराये, यह बात ऐसी ही है वह ज्ञान प्रमाण होता है।

अव्यवसायमें प्रमाणत्वकी अयुक्ति व्यवसायी ज्ञानकी प्रमाणताके विरुद्ध क्षणक्षयवादी यह कह रहे हैं कि जब पदार्थ सब क्षण–क्षणमें नष्ट होते हैं तो जिस समयमें जो पदार्थ हुआ उस समयमें उसका निश्चय हो नहीं सकता। ज्ञान तो हो जायगा, पर निर्विकल्प होगा, अतएव निर्विकल्प ज्ञान ही प्रमाण है। और जिस ज्ञान में निश्चय बसा हुआ है कि यह पदार्थ ऐसा है वह ज्ञान अप्रमाण है। जब उनसे पूछा जाय कि जिसमें निश्चय ही कुछ नहीं है ऐसा निर्विकल्पज्ञान कैसे प्रमाण हो गया, उससे निश्चय कैसे बनेगा ? तो बताते हैं वे कि निर्विकल्पज्ञान सविकल्प ज्ञानको उत्पन्न करता है इसलिए वह प्रमाण है। तो जो निर्विकल्प ज्ञान (दर्शन) स्वयं केछ समझा नहीं गया वह निश्चयका ज्ञान कराने वाला कैसे बनेगा ? अनुभूतिमात्रसे दर्शनको विकल्पजनक कहोगे तो क्षणिकताका विकल्प क्यों नहीं हो। इसके उत्तरमें क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि जिस पदार्थमें निर्विकल्प ज्ञान विकल्प वासना जगाये वह उस पदार्थमें प्रमाण उत्पन्न करता है, प्रबोध करता है यह भी युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होती। यदि दर्शन (निर्विकल्प ज्ञान) अनुभवन मात्रसे प्रबोध करने लगे तो जैसे सीधा यह ज्ञान करनेमें प्रबोध माना है कि यह पट नीला है, पीला है इस तरह सब क्षणिक है क्योंकि सत्त्व होनेसे इस अनुमानमें भी विकल्पवासनाका प्रबोध बन जाना चाहिए। प्रयोजन यह है कि ऋजुसूत्रनयके एकान्ती ऐसे ज्ञानको प्रमाण मानते हैं जिसमें न आकार ज्ञानमें आया न उसकी शकल ज्ञानमें आयी, किन्तु स्वलक्षणमात्र हो गया ज्ञान तो भला बतावो कि यह निर्णयके बिना ज्ञान किसका नाम है ? वास्तवमें जो ज्ञान अपना भी निश्चय कराये और परका भी निश्चय कराये उसे प्रमाण कहते हैं।

दर्शनकी नियतप्रबोधकतापर क्षणक्षयका सिद्धान्त - यह दार्शनिक ग्रन्थ है, इसमें वस्तुके स्वरूपके सम्बन्धमें कौन दार्शनिक क्या कहता है उसका विवेचन है और जैन सिद्धान्त क्या कहता है उसका इसमें प्रतिपादन है। इसमें सबसे शुरूमें ही इसी बातपर चर्चा चलायी गई कि प्रमाण कौन होता है। जब तक प्रमाणका पता न पड़े तब तक आगे सिद्ध क्या किया जाय। जैन सिद्धान्तका तो यह मंतव्य है कि जो ज्ञान अपना भी निश्चय रखे, पर पदार्थका भी निश्चय रखे वह प्रमाण है। और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्षणिकवादी यह कहते हैं कि निश्चय कराने वाले सारे ज्ञान झूठे हैं, किन्तु जिसमें निश्चय तो नहीं किन्तु कुछ ज्ञान है वह प्रमाण है। और वह निर्विकल्प ज्ञान विकल्प वासना बनाता है, उससे फिर जीवोंका निश्चय बनता है। तो पूछा गया यहां कि जो चीज सामने दिखती है उसमें तो निश्चय बन जाता है और जो अनुमानकी चीज है उसमें विकल्प वासनाका प्रबोध नही माना तो क्या कारण है ? तो उनका कहना है कि भाई उसमें अभ्यास नहीं है, उसका प्रकरण नहीं है। उसमें दर्शन नहीं होता, उसमें चतुराई नहीं है, उसकी इच्छा नहीं है इस कारणसे अनुमानका तो प्रबोधक नहीं होता और जो आंखों दिखता है उस पदार्थके सम्बन्धमें विकल्प वासनाका प्रबोध हो जाता है।

अभ्यासके अभावकी युक्तिकी असंगतता—यदि अभ्यासके अभावसे दर्शन क्षणक्षयमें विकल्प वासनाका प्रबोधक नहीं है यो वह अभ्यास नाम किसका है ? किसी चीजको बार बार देखनेका नाम अभ्यास है या उसमें विकल्प पैदा करनेका नाम अभ्यास है। यदि बारबार देखनेका नाम अभ्यास कहें तो जैसे हम बारबार नीला पीला पर देखते हैं इसी प्रकार उस क्षणक्षयके अनुमानका भी हम बारबार विचार करते हैं, तथा यही विकल्पोंकी उत्पत्तिकी भी है। विकल्पोत्पत्तिरूप अभ्यासका क्षणक्षयादिके दर्शनमें कैसे अभाव माना जाय। यदि यह कहो कि क्षणक्षयादि दर्शनमें विकल्पवासना की प्रबोधकता नहीं है इससे विकल्पोत्पत्तिरूप अभ्यासका वहां अभाव है तो इस कथन में अन्योन्याश्रय दोष हो गया। क्षणक्षयादिमें दर्शनकी विकल्पवासना प्रबोधकताका अभाव सिद्ध हो तब तो विकल्पोत्पत्तिरूप अभ्यासके अभावकी सिद्धि होगी और जब विकल्पोत्पत्तिरूप अभ्यासके अभावकी सिद्धि हो, तब क्षणक्षयादिमें दर्शनकी विकल्प-वासना प्रतिबोधकताका अभाव सिद्ध होगा। इस कारण अभ्यासके सद्भाव व अभाव की युक्ति असंगत है।

प्रकरणके अभाव युक्तिकी असंगतता—प्रकरण तो जैसे नीलादी अर्थकी विचारणामें हुआ करता है, ऐसे ही क्षणिक और अक्षणिककी विचारणाका भी प्रकरण बना हुआ है। दर्शन विकल्पवासनाका प्रबोधक है तो क्षणक्षय ज्ञानमें साकारताका रूप आना चाहिये। यों निर्विकल्प ज्ञान अव्यवसायी है और व्यवसायका कारणभूत भी नहीं हो सकता सो वह प्रमाण नहीं बन सकता। अब आप यह देखिये कि हमारी जानमें यह चौकी है तो ऐसा ज्ञान करनेमें दो बातें बनती हैं। एक तो यह कि चौकी ही है अन्य कुछ नहीं है। यह निर्णय है कि नहीं ? और एक यह निर्णय है कि मेरा ज्ञान बिल्कुल पक्का है। यह चौकी ही है तो ज्ञानकी पक्कायत करना और पदार्थकी दृढ़ता करना ज्ञानमें ये दो निर्णय पड़े हुए हैं। जैसे दीपक है तो दीपकमें दो कलायें हैं— खुदका भी प्रकाश करे और दूसरे पदार्थका भी प्रकाश करे। क्या कोई दीपक ऐसा भी है कि जिसको ढुढ़नेके लिये नए दियाकी जरूरत पड़ती हो ? दीपक मायने जलता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुआ। कोई कहे कि उस कमरेसे दीपक उठा लावो, जलती हुई लालटेन उठा लावो तो क्या कोई यह कह सकता है कि हमको एक और लालटेन न दो तो हम उसे ढूंढ़ कर उठा लायें ? अरे वह तो स्वपर प्रकाशक है। ऐसे ही ज्ञानका माहात्म्य है कि सारे अर्थोंको भी जानें और अपने आपको भी जानें।

पाटवके अभावकी असंगतता—चतुराईकी बात कहो तो चतुराई नाम किसका है ? जो कुछ ये पदार्थ दिखते हैं इन पदार्थोंमें जो पहिले दर्शन हुआ वह विकल्प उत्पन्न करदे इसका नाम चतुराई है या स्पष्ट अनुभव हो उसका नाम चतुराई है, या अज्ञानका नास होनेसे आत्म लाभ होनेका नाम चतुराई है ? यदि विकल्पोत्पादकता का नाम चतुराई है तो उसमें अन्योन्याश्रत दोष है क्षणक्षयादिके सम्बन्धमें दर्शनकी विकल्पवासना प्रतिबोधकताका अभाव सिद्ध हो तब विकल्पोत्पादकत्वरूप पाटवका अभाव सिद्ध हो और जब ऐसे पाटवका अभाव सिद्ध हो तब क्षणक्षयादिमें दर्शनकी विकल्पवासना प्रतिबोधकताका अभाव सिद्ध हो। और, यदि स्फुटतर [अतिस्पष्ट] अनुभवका नाम पाटव (चतुराई) है है तो स्फुटतर अनुभव अनुमानमें भी होता है। तथा अविद्यावासनाविनाशकी बात यों युक्त नहीं है कि तुच्छ स्वभावरूप अभाव सम्मत नहीं है। जैसे किसीसे कहें कि अमुक कमरेमें थाली चौकीपर रखी है उसे उठा लावो और कहां थाली है नही तो वह जाकर, देखकर यही तो कहेगा कि यहां थाली नहीं है। तुमने आंखों देखा कि वहां चौकीपर थाली नही है ? हाँ हाँ हमने देखा कि वहाँ चौकी पर थाली नहीं है। अरे वहां चौकीपर थालीका अभाव भी कहीं दिखता है। केवल चौकी ही दिखी ईसीके मायने है आंखों देखा कि चौकीपर थाली नहीं है। नोनएक्जिस्टेन्स क्या आंखोंसे दिखता है ? जो चीज है नहीं वह दिखे कैसे। खाली चौकीका दिखना ही थालीके न होनेकी बात है। थालीसे रहित चौकीका दिख जाना ही थाली के अभावका द्योतक है। किसी भी चीजको देख लो अभाव किसी वस्तुका नाम नहीं है। जैसे चौकी यह है, चस्मा यह है इसी प्रकार अभावको कोई बता सकता कि क्या है ? अभाव कोई चीज नहीं होती। अभाव किसीके सद्भावरूप होता है। जैसे घड़ा फोड़ दिया, खपरिया बन गई, घड़ेका अभाव हो गया तो घड़ेका नाम क्या चीज है ? उन खपरियोंका ही नाम घड़ेका नाश है, कोई अलग चीज नहीं है आज यह जीव है मनुष्य और मनुष्य पर्यायसे हटकर देव पर्यायमें आ गया तो कहा कि मनुष्यका नाश हो गया। वहाँ देव होनेका ही नाम मनुष्यका नाश है। तो किसी पर्यायका नाम ही पूर्व पर्यायका अभाव है।

व्यवसायात्मक ज्ञानते परमार्थलाभ—भैया किसी भी तरहसे यह बात नहीं सिद्ध हो सकती है कि निर्विकल्पज्ञान प्रमाण है। किन्तु जिस ज्ञानमें पदार्थका आकार आता है। निश्चय होता हैं वह ज्ञान प्रमाण होता है जिसे इन दृश्यमान पदार्थो के जाननेकी इच्छा होती है ऐसे ही पदार्थोंमें जो गुप्त तत्त्व पड़े हुए हैं उन्हें भी जानने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की इच्छा होती है। तो जब ज्ञानका एक आकार आ जाता है वस्तुका तो वह ज्ञान प्रमाण होता है। यों ही काल्पनिक निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण नहीं है। देखो आत्मामें आत्माकी प्राप्ति सम्यग्ज्ञानसे ही होती है। बाह्य तत्त्वोंका कितना भी संचय करलें, कितनी भी विभूति हो जाय, चक्रवर्ति जैसा वैभव मिल जाय लेकिन बाह्य विभूतिसे किसी को भी आत्मलाभ नहीं होता है, शान्ति नहीं मिलती।

बाह्य वैभवोंसे शान्तिका अलाभ आप अनेक घटनाएँ सुनेंगे कि अमुक आदमी डाकुवोंके द्वारा मारा गया किस कारण कि वैभव साथमें था। जिनके पास वैभव अधिक है उनकी दशायें तो देखो, अनेक चिन्ताएँ हैं, अनेक शत्रु सतायें, राजा भी सताये, सब ओरसे वे विपत्तियोंका अनुभव करते हैं। विपत्ति उनपर भी नहीं हैं किन्तु धनके सम्बन्धमें इतनी तीव्र आशक्ति है कि न्याय अथवा अन्याय किसी तरहसे यह धन जुड़े ऐसा परिणाम है, ऐसी उनकी कोशिश है इस कारण आकुलता है। यह धन वैभव कितना भी आये वह पुण्यका फल है। धनको कोई मनुष्य चाहे कि हम कमा लें तो उसके हाथ पैर धन कमाते हैं या बुद्धि कमाती है? आपसे अधिक बुद्धि इन अनेकोंमें है, आपसे अधिक श्रम अनेक करते हैं। यह तो पुण्यका फल है, आता है तो आये, जाता है तो जाये, पुण्यसे भी महत्त्वकी चीज है धर्म, क्योंकि धर्म तो शान्तिका कारण है और पुण्य आकुलताका कारण है। कभी पुण्यवानोंको भी शान्ति होती हुई नजर आती हो तो पुण्यके साथ–साथ जो धर्म लगा चलता है उससे शान्ति मिलती है, पुण्यसे शान्ति नहीं मिलती।

शान्तिका स्वरूप एकत्व उपाय एक – पापका फल विपदा है तो पुण्यका फल सम्पदा है। शान्तिका कहाँ सम्बन्ध रहा? शान्ति तो यथार्थज्ञानमें ही हो सकती है। वह यथार्थज्ञान क्या है यह निर्णय करनेसे पहिले ज्ञानका ही स्वरूप बताया जा रहा है कि ज्ञान कौन सा सही होता है? कहा है ना —"ज्ञान समान न आन जगतमें सुखका कारण"। ज्ञानके समान दुनियामें शान्तिका कारण और कुछ है ही नहीं। वैभव रहते हुए भी यदि ज्ञान सही जागृत है तो वहाँ भी शान्ति है, वभवके न होते हुए भी सही ज्ञान है तो वहाँ भी शान्ति है। और, फिर वैभवका ठिकाना क्या? कितना वैभव हो तो शान्ति मिले यह आज तक किसीने निर्णय किया है क्या? कितनी सम्पदासे सुख मिलता है यह कहीं लिखा हुआ देखा है क्या, या किसीने तय किया है क्या? हजारपती लखपतीको निरखकर सोचता है कि मेरे पास कुछ नहीं है। तो इस धन आदिक वैभवमें तो अपेक्षाएँ हैं पर ज्ञानधनमें अपेक्षायें नहीं हैं। अनन्त ज्ञानी हुए, सबको शान्ति मिली उन सबको एक ही उपायसे मिली। आत्माका ज्ञान आत्मामें मग्नता वह उपाय सबका एक ही किस्मका था और निर्वाण और शान्ति भी सबकी एक ही किस्मकी है। यहाँ तो सुख भी अनेक तरहके हैं दुःख भी अनेक तरहके है। किसीका सुख किसीसे मिलता जुलता नहीं है। कोई किसी बातमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सुख मानता कोई किस बातमें, उनके सुख बदलते भी रहते हैं, दुःख भी अनेक तरहके हैं और दुःख भी बदलते रहते हैं।

धर्मका अन्तर्वास -भैया ! लोकमें ये ६ बातें हैं, जीवके सुख और दुःख व उनके कारण हैं पुण्य और पाप, पुण्य और पापके कारण हैं शुभ और अशुभ परिणाम। ये ६ बातें संसारके साधक हैं। इनसे भिन्न जो आत्माका शुद्ध ज्ञान ज्योति प्रकाश है वह धर्म है। धर्मपालन करनेके लिए यत्न करना चाहिए ज्ञानार्जनका। ज्ञानदृष्टि बनायें, बाह्य तो एक अवलम्बन मात्र हैं। जैसे जब पूजा करते हैं तो अष्ट-द्रव्य जो बनाया है और अष्टद्रव्य जो चढ़ाया है वही पूजा नहीं है, वह तो एक अवलम्बन है कि जिसके सहारे हमारा कुछ समय भगवानके गुणोंमें स्तवनमें व्यतीत हुआ। वह अवलम्बन है। उस समय दृष्टि ले जाना चाहिए प्रभुके अन्तः स्वरूपकी ओर और अपने अन्तरङ्ग स्वरूपकी ओर, तब वहाँ वास्तविक पूजा कहलाती है। ऐसे ही धर्म पालनके लिए हमें यत्न करना चाहिए कि समस्त बाह्य पदार्थोंसे हमारे विकल्प हटें और सत्यज्ञानकी दृष्टि बने।

अन्यः पौरुषसे अन्तः धर्मकी उपलब्धि--अन्तःस्वरूपकी दृष्टिकी बात कभी दूकानपर बैठकर भी आप पा सकें तो वहां भी धर्मपालन किया। यह दृष्टि कहीं मंदिरमें या कहीं चलते हुए पा सकें, वहाँ भी धर्म पालन किया और यह दृष्टि मंदिर में बैठकर भी न पा सके तो यहाँ भी अभी धर्मपालन नहीं किया। मन्दिर हमारे लिए एक निराकुलताका निमित्त है, पर मन्दिर ही स्वयं धर्म नहीं होता। मंदिरमें आकर हम अन्तरङ्गमें धर्म करें तो धर्म होता है। घर गृहस्थीका निवास आकुलताका साधन है क्योंकि वहाँ नाना प्रकारके परपदार्थोंका सम्बन्ध है। मन्दिरमें देव, शास्त्र, गुरुका सम्बन्ध है। तो यहाँ हमें आत्मदृष्टि और धर्मपालनकी बात सुगमतासे हो सकती है इसलिए हम मन्दिर आते हैं और धर्मपालन करते हैं, पर मन्दिरमें आना ही धर्मपालन नहीं हुआ, धर्मपालन है आत्माकी अन्तः स्वच्छता। यहाँ भी यदि कोई मोहकी बात सोचता रहे या किसी पुरुष स्त्रीको देखकर कोई विकारकी बात मनमें लाता रहे तो धर्मपालन नहीं हुआ धर्म नाम है रागद्वेष रहित निर्विकल्प अपना परिणाम बनानेका।

स्वरूपप्रतिपादनका प्रयोजन संकटमुक्ति—दार्शनिकोंने जो वस्तुका स्वरूप बताया है उस स्वरूपकी समझसे यही कोशिश की है कि हमारे रागद्वेष मोह मिटें। जो-जो कुछ भी परिभाषायें बनी हैं दार्शनिकोंकी मूलमें उन सबका प्रयोजन यही है कि मोह रागद्वेष मिटे। अब उसका सच्चा उपाय बन पाये या न बन पाये यह उनकी प्रतिभाकी बात है, पर सभी लोग चाहते हैं कि ये रागद्वेष मोह दूर हों। आपको चाहिए क्या ? शान्ति। शान्ति मोह दूर होनेसे मिलती है। तो निर्मोहताका प्रोग्राम क्यों नहीं मनमें सोचते ? मोहका उदय ऐसा है कि मोहसे ही तो दुःखी होते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं और उस दुःखको दूर करनेके लिए मोहका ही प्रयास करते हैं। भला खूनका दाग कहीं खूनसे ही धुल सकता है ? ऐसे ही मोहसे जो वेदना उत्पन्न होती है वह वेदना क्या मोहसे नष्ट हो सकती है ? निर्मोह परिणाम करे तो नष्ट होगी। इन बाह्य समागमोंका विश्वास छोड़ें, ये ही सब कुछ नहीं है। इनसे मेरा हित नहीं है। ये तो थोड़ी देरको मिले हैं। थोड़ी देरको इस मकानमें, धर्मशालामें हम ठहर गए, पर कब तक ठहरना होगा ? कभी तो बिछुड़ना होगा। जब समय आयगा तब एक मिनट भी अधिक कोई घरमें नहीं रख सकता।

संगमका पार्थक्य एक साधु था। तो ऐसे ही शहरमें चला जा रहा था। रास्तेमें एक बड़ी हवेली मिली, हवेलीपर पहरेदार था। उससे साधुने पूछा कि यह धर्मशाला किसकी है ? पहरेदार कहता है महाराज यह धर्मशाला नहीं है, धर्मशाला आगे है। तो फिर साधु कहता है नहीं—नहीं तुम यह बतावो कि यह धर्मशाला किसकी है। फिर पहरेदारने कहा कि आपको ठहरना ही है तो आगे धर्मशाला है उसमें ठहरिये, यह धर्मशाला नहीं है। फिर साधु यही कहता है कि मैं तो यह पूछता हूँ कि यह धर्मशाला किसकी है ! मालिकने सुन लिया, साधुको बुलाया, आसनपर बैठाया, कहा महाराज यह धर्मशाला नहीं है। आपको ठहरना हो तो यहाँ ठहरिये, हमारा बड़ा सौभाग्य है, पर धर्मशाला तो आगे है, यह तो हवेली है। तो साधु पूछता है कि इस हवेलीको किसने बनवाया था ? हमारे दादाने। तुम्हारे दादा इसमें कितने दिन रहे ? महाराज हमारे दादा तो पूरी बनवा भी न पाये थे और उनकी मृत्यु हो गयी। फिर शेष हमारे पिताने बनवाया। तुम्हारे पिताजी इसमें कितने दिन रहे थे ? सिर्फ ६ वर्ष। और तुम कितने दिन रहोगे ? इतनी बात सुनकर मालिककी आंखें खुल गईं ज्ञान जगा और साधुके पैर छू कर बोला महाराज मैं आपकी बात अभी तक न समझ सका था अब समझमें आया। समझमें आया ना, कि यह धर्मशाला है। धर्मशालामें तो यदि ७ दिन ठहरनेकी आज्ञा है तो वहाँ इससे ज्यादा भी ठहर सकते हैं। मंत्रीको दरख्वास्त देकर एक महीनेका समय और बढ़वाया जा सकता है पर यह तो ऐसी धर्मशाला है कि जहाँ समय पूरा हुआ कि १ मिनट भी नहीं ठहरा जा सकता है। यह तो उस धर्मशालासे भी कठिन है।

समागमके व्यामोहमें बरबादी— भैया ! इन समागमोंमें वैभवोंमें भूले भटके रहनेसे पूरा न पड़ेगा। भले ही मोहमें कुछ भला सा लग रहा है, विषयोंके साधन अच्छे मिले हैं, स्त्री पुत्रादिक भी राग भरी वाणी बोलते हैं लेकिन इन समागमोंमें अब भी आकुलता है और इनसे जो कर्मबन्ध होगा उसके उदयमें भविष्यमें आकुलता रहेगी। समागमोंमें विश्वास मत रखो। विश्वास रखो रत्नत्रयमें। मेरे आत्माका सच्चा श्रद्धा न हो, सच्चा ज्ञान हो और उस ही अनुकूल हमारा परिणमन हो तो इसमें मेरी भलाई है एतदर्थ ही आत्माके ज्ञानके सम्बन्धमें ये दार्शनिक लोग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपनी–बात रख रहे हैं।

निर्विकल्प स्वरूपकी ओर गतिका प्रयास—कोई लोग मानते हैं कि आत्मा अपरिणामी है सदा एक रूप है और वह एक है। ज्ञान होता है वह प्रकृतिका धर्म है। ज्ञान तरंग भी आत्मामें नहीं है। तो यहाँ क्षणक्षयवादी यह कह रहे हैं कि आत्मा तो क्षणिक है। आत्मा है ज्ञानस्वरूप, पर वह ज्ञान भी क्षणिक है और निर्विकल्पज्ञान मात्र ही क्षणिक आत्मा है। फिर तो जैसे एक दिया जलता है और उस दियामें जल तो रहा तेलका एक–एक बूंद। एक–एक बूंद जितने–जितने क्षण जला वह है दीपक, पर निरन्तर जलते रहनेसे ऐसा लगता है कि यह वही दीपक है जो आधा घंटासे जल रहा है। ऐसे ही क्षणक्षयवादमें मंतव्य है कि आत्मा तो है क्षण–क्षणमें नष्ट होने वाला पर एक देहमें अनेक आत्मायें लगातार होती रहती हैं तो उन सब आत्मावोंको यह भ्रम हो गया कि मैं वह आत्मा हूँ जो पहिले भी था। उनका भी प्रयोजन यह है कि हम क्षणमात्र आत्माको जानें और रागद्वेषमोहको हटावें। यह उपाय बताया है, पर जैन सिद्धान्त यह कहता है कि आत्मा अविनाशी है, उसकी पर्यायें क्षणिक हैं उसका ज्ञान क्षणिक है। क्षणिकपर दृष्टि मत डालें और आत्माके अविनाशी स्वभावपर दृष्टि दें तो रागद्वेष मोह दूर होंगे और आत्माका निर्वाण होगा, आनन्दमय सत् बन जायगा। प्रभुको हम क्यों पूजते हैं? उन्होंने पूर्ण आनन्दमय स्थिति पायी, हम भी प्रभुकी तरह शुद्ध मार्गपर चलकर ऐसे ही परम निर्वाणकी स्थिति पायें, यही जीवनमें प्रोग्राम रखें, मोह ममतासे इस जीवनका कुछ लाभ नहीं है।

क्षणक्षयादिमें विकल्पवासनाका प्रबोध असिद्ध करनेके लिये दी गई अर्थित्वके अभावकी युक्तिकी असंगतता—स्पष्ट बात तो यह है कि आत्मा ज्ञानमात्र है, ज्ञानवृत्ति ही इसका व्यवसाय है। जब ज्ञान ज्ञानस्वरूपका ज्ञान करता है तब आत्माको निरापद पद प्राप्त होता है। वह ज्ञान क्रियात्मक है इस पर विचार चल रहा है। ज्ञानसे ही निर्णय करके ज्ञानी संत परम हितकी प्राप्ति करते हैं। अतः प्रमाणभूत वह ज्ञान व्यवसायात्मक हो होता है। इसके प्रतिपक्षमें क्षणक्षयसिद्धान्तने अव्यवसायात्मक ज्ञानको प्रमाण माना है। उस प्रसंगमें प्रश्नोत्तर हो–हो कर एक यह प्रश्न अभी शेष रहा है कि अव्यवसायी ज्ञान प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थोंमें विकल्प (व्यवसाय) उत्पन्न करता है तो यह निर्विकल्प ज्ञान क्षणक्षयादि अनुमित तत्त्वमें क्यों विकल्पवासनाका प्रबोधक नहीं बनता। इसके उत्तरमें एक यह पक्ष उसका शेष रहा है कि क्षणक्षयादिमें अर्थित्वका अभाव है इससे विकल्पवासना नहीं जगती। तो यहाँ अर्थित्वका क्या तात्पर्य है? क्या चाहें जानेका नाम अर्थित्व है या जानना इष्ट होनेका नाम अर्थित्व है! चाहे जानेकी बात तो यों अयुक्त है कि कहीं सर्प, कण्टक आदि अनभिलषित पदार्थमें भी विकल्पवासनाका प्रबोध देखा जाता है। तथा इसमें तो एक यह चक्कर ही बन गया कि अभिलाषासे विकल्पवासनासे प्रबोध हो, उससे

http://sahjanandvarnishastra.org/

विकल्प (व्यवसाय) बने व उससे अभिलाषा बने। यदि अर्थित्वका तात्पर्य "जाननेकी इष्टता" तो नीलादिककी तरह क्षणक्षयादिको भी जाननेकी इष्टता पाई जाती है सो क्षणक्षयादिमें भी विकल्पवासननाका प्रबोध होना चाहिये। फलित यह है कि निर्विकल्प ज्ञानकी सिद्धि ही नहीं है, उसकी प्रमाणताका विचार तो दूर ही है।

निर्णयोत्पादकताके कथनसे निर्विकल्प ज्ञानको प्रमाण सिद्ध करनेके यत्नकी सूचना—जो बात हितमें लगा दे और अहितसे दूर कर दे उसको प्रमाण कहते हैं। हितमें लगानेमें समर्थ और अहितसे दूर करनेमें समर्थ सच्चा ज्ञान ही है, अतएव ज्ञान ही प्रमाण है। इसपर क्षणिकवादका यह मत है कि ज्ञान प्रमाण अवश्य है, परन्तु ज्ञानकी होती हैं दो धारायें। एक वस्तुको निरखते ही तुरन्त जो बोध हुआ वह तो है निराकार और उसके बाद जो वस्तुके निरखनेके बाद अनेक प्रकारके विकल्प बनते है, अमुक वस्तु ऐसी है अमुक रंगकी है यह कहलाता है सविकल्प अर्थात् साकार उसमेंसे निर्विकल्प ज्ञान तो प्रमाण है और सविकल्प ज्ञान अप्रमाण है। बस प्रसंगमें अनेक चर्चायें चलनेके बाद यह बात पूछी गई कि जिस ज्ञानसे कुछ तत्त्व भी नहीं आता, कुछ निश्चय भी नहीं होता वह अज्ञात याने अव्यवसायी ज्ञान कैसे प्रमाण है। तो उनका कहना था कि यही ज्ञान तो सविकल्प ज्ञानको उत्पन्न करता है अतः प्रमाण है।

एकस्वभावी निर्विकल्प ज्ञानमें भेद आनेका प्रसंग—तो इसपर यह दोष दिया जा रहा है कि यदि तुम्हारा निर्विकल्प ज्ञान सविकल्प वासना बनाता है तो दृश्यमान पदार्थोंमें तो विकल्प बना देता है और जो क्षणिक आदिक अनुमान ज्ञान किए जाते हैं उनमें क्यों नहीं बनाता ? इस कारण निर्विकल्प ज्ञान विकल्पका जनक भी नहीं है। इसपर यह आपत्ति क्षणिकवादी लोग दे रहे हैं कि जैनियोंके यहाँ भी जो सविकल्प प्रत्यक्ष माना है उनके भी तो पूरा-पूरा निश्चय नहीं होता। किसीने कोई बात कही तो सुनने वाला क्या यह भी जानता है कि इसके बोलनेमें इतने अक्षर आये, इतने पद आये, इतने श्वांस निकले ? क्या इन बातोंका भी कोई ज्ञान करता है ? हम बोलते हैं और आप सुनते जा रहे हैं और अर्थ भी सोचते जा रहे हैं किन्तु ऐसा-ऐसा भी कोई सोच रहा है क्या कि इतने शब्द निकले, इतने अक्षर निकले, इतने पद कहे, इतने श्वाँस निकले ? तो जैनोंका ज्ञान भी समस्त विकल्पोंका निर्णय नहीं करता। इसपर उत्तर दिया जा रहा है कि भाई निर्विकल्प ज्ञान तो एक स्वभावी है किन्तु यहाँ ज्ञान एक स्वभावी नहीं है। मनुष्योंके संस्कार हैं, उन संस्कारोंके माफिक कोई ज्ञान दृढ़ता रखता है, अनेकोंकी धारणा रखता है, कोई ज्ञान अनभ्यासी है उसमें विविध प्रतिबोध नहीं है, अतः कोई दोष नहीं है।

ज्ञानकी उत्तरोत्तर परिस्थितियां—जैन सिद्धान्तमें ४ प्रकारके मतिज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बताये हैं अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। तत्वार्थसूत्रमें सब लोग पढ़ते हैं। सर्व प्रथम पदार्थको निरखनेके बाद जो ज्ञान होता है वह अवग्रह है, फिर उससे जो विशेष जाननेका यत्न होता है वह ईहा है, और उसका जो निर्णय हो जाय वह अवाय है और फिर उसमें संस्कार बनें, बराबर अभ्यास बने वह धारणा है। तो इन चार ज्ञानों में तीन तो अनभ्यस्त हैं अवग्रह ईहा अवाय किन्तु धारणा अभ्यासात्मक है। अनभ्यासी ज्ञानसे अभ्यासात्मक धारणा अलग चीज है। तो ज्ञानकी अनेक डिग्रियाँ हैं– कोई किसी प्रकारका ज्ञान है कोई किसी प्रकारका ज्ञान है। किसीकी ऐसी बुद्धि होती कि बोलने वालेके वाक्य तुरन्त गिन लेते हैं कोई इसपर ध्यान नहीं देते। तो यह ज्ञानके भेदका भेद है, पर क्षणिकवादियोंके जो उन्होंने प्रमाणभूत ज्ञान माना है उसमें तो कोई भेद ही नहीं है। यहाँ तो भेद है। जब धारणा ज्ञान नहीं है तो अवग्रह, ईहा, अवाय होनेपर विशेष और विविध ख्याल नहीं बनता, और जब धारणा हो जाती है तो ख्याल बनते ही हैं। तो जैसा संस्कार है वैसा स्मरण होने लगता है। पर क्षणक्षय सिद्धान्तमें यह बात युक्त नहीं है क्योंकि उनका प्रमाण है दर्शन और उससे भेद नहीं है। अगर भेद हो जाय तो उनके ही मतमें विरोध आ जायगा।

अपने आपके जाननेमें बुद्धिप्रयोगका औचित्य—प्रयोजन यह है कि हम आप ज्ञानस्वरूप हैं हम अपने ही ज्ञानका जब सही निर्णय नहीं कर सकते तो हमने जगतमें क्या निर्णय किया। हम बाहरी पदार्थोंकी तो व्यवस्था अच्छी बनायें, बढ़िया दूकान बनायें, परिवारकी व्यवस्था करें, यद्यपि जगतके जीव सब न्यारे हैं तो भी उन में यह कल्पना करें कि ये दो तीन प्राणी तो मेरे हैं, इनके लिये ही मेरा तन मन, धन सब कुछ है, बाकी जीव सब गैर हैं। भैया एक कितना अज्ञान अंधकार है। भले ही व्यवस्थाके नाते यह करना कर्तव्य है कि उन परिजनोंकी सम्हाल करें, पर ऐसा अज्ञान बसना कि ये मेरे हैं, बाकी सब गैर हैं यह कोई भली बात है क्या? जगतके सभी जीव ज्ञानस्वरूप हैं, अपनी अपनी सत्ता रखते हैं, मुझसे सब भिन्न हैं। चाहे अपने घर में कोई उत्पन्न हुए हों वे सब भी भिन्न हैं और जिन्हें गैर माना जा रहा वे भी सब उतने ही भिन्न हैं। बल्कि निमित्त दृष्टिसे देखो तो जिन्हें हम गैर मानते हैं उनसे हमारा बिगाड़ नहीं होता और जिन्हें हम अपना मान रहे उनसे रागद्वेष मोह होता, आपत्ति आती। बन्धन पड़ता, उनसे बिगाड़ है। लेकिन मोहमें जीवको यह मति बनती है कि ये मेरे हैं, मेरा जीवन इनके ही लिये हैं और बाकी गैर हैं, उन्हें कुछ भी हो, ऐसी द्वैत बुद्धि जगती है वही अनर्थ करने वाली चीज है। हम अपने आपके ज्ञानस्वरूपको तो जानें।

स्वव्यवस्थाके पुरुषार्थका न्याय—सबकी हम व्यवस्था न करें और अपनी व्यवस्था न कर सकें तो बतावो कहां टिकेगा यह? कोई मनुष्य दूसरेके घरमें घुसे, उसे निकाले, फिर वह दूसरेके घरमें जाय, अपने घरको भूला रहे तो उसका ठौर रहेगा? इस जगतके चिकने चाकने पदार्थोंमें हम अपना उपयोग दौड़ाते हैं मगर जमता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो नहीं है। जिसमें सोचते हैं वहीं से धोखा मिलता है। जिन जिनका संयोग हुआ है वियोग तो उनका नियमसे होता ही है। लेकिन मोहकी ऐसी बात है कि जिससे धोखा मिलता। क्लेश मिलता फिर उसीमें लगता है। फल यह होता कि इसी तरह संसार रुलना फिरना इसका बना रहता है अपने स्वरूपका निर्णय करलें। यही एक काम है। यह पुरुषार्थ कर सके तो मनुष्य होनेका अर्थ निकला, और एक अपने आपका निर्णय न कर सके तो आहार तो पशु भी करते, मनुष्य भी करते, निद्रा पशु भी लेते मैथुन पशु भी करते मनुष्य भी करते, भय पशु भी करते मनुष्य भी करते। तो कौन सी बड़ी बात मनुष्य ने करली ? कुछ स्वप्नवत् असार वैभव इकट्ठा हो गया तो इसका है क्या, आंखें मिचीं और सब खतम।

राज्यमें विद्वत्ताके सम्बन्धके आदरका एक उदाहरण भैया! कोई समय था ऐसा जब ज्ञानका बड़ा आदर था। राजा महाराजा लोग भी विद्वानोंका कवियोंका अत्यन्त अधिक आदर करते थे। उनकी दृष्टिमें ज्ञानका महत्त्व था। ऐसा समय राजा भोजके समयमें एक खासा गुजरा है कि जहां विद्वानोंका बड़ा आदर था और उनकी बड़ी खबर रखी जाती थी। एक एक श्लोकके सुननेपर उन्हें हजारों लाखों रुपयोंका द्रव्य प्रदान किया जाता था। उस समयकी एक घटना है कि किन्हीं चार देहातियों ने एक बार सोचा कि चलो अपनी भी कुछ कविता करलें राजाको सुनावेंगे तो वहाँसे कुछ अच्छा द्रव्य मिलेगा। चले चारों देहाती। रास्तेमें एक बुढ़िया रहटा कात रही थी उसे देखकर एक देहातीने कविता बना ली, चनर मनर रहटा भन्नाय। बोला हमारी तो कविता बन गई। आगे चले तो देखा कि कोल्हूका बेल खली भुस खा रहा था सो दूसरा देहाती कहता है कि हमारी भी कविता बन गई कोल्हुका बैल खली भुस खाय। और आगे बढ़े तो देखा कि एक आदमी कंधेपर पीजना लादे चला आ रहा था, उसे देखकर तीसरा देहाती बोला कि हमारी भी कविता बन गई वहाँसे आ गए तरकस बन्द। अब चौथेसे कहा कि तुम भी कविता बनाओ, तो चौथा देहाती कहता है कि हम पहिलेसे कविता नहीं बनाते हम तो तुरन्त ही बनाकर सुना देंगे। चारों पहुंचे राजा भोजके दरबारमें। बाहर जो द्वारपाल खड़ा था। उससे उन देहातियोंने कहा कि महाराज साहाबसे कह दो कि आज चार महाकविश्वर आए हैं। द्वारपालने राजासे जाकर बताय। राजा ने कहा अच्छा बुलावो। जब चारों देहाती पहुंचे राजाके पास तो राजा ने चारोको कमसे खड़ा कर दिया और अपनी अपनी कविता सुनानेके लिये कहा। एक सो चौथे देहातीने क्या कविता बनाया यह हम जो चौथे छन्दमें कहें सो समझना)। सुनाने लगे चनर-मनर रहटा भन्नाय कोल्हूका बैल खली भुस खाय, वहाँसे आ गये तरकस बन्द, राजा भोज हैं मूसर चन्द। राजा भोज विद्वानोंसे कहते हैं कि इन कविवोंकी कविताओंका अर्थ तो लगावो। सब लोग दंग रह गय। अगर कवितामें कोई दम हो तो अर्थ लगायें। एक दूसरेका मुंह तकने लगे। एक बूढ़ा पुरुष उठा बोला महाराज हम इनकी कविताका अर्थ लगाते हैं। इस कविता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में बड़े मर्म छिपे हैं। यह पहिला कवि कह रहा है कि यह जो शरीर रूपी रहटा है वह रात दिन चारमनर भन्नाया करता है अर्थात् यहाँ वहाँ दौड़ा धूपा करता है और दूसरा कवि यह कहता कि यह जो इसके भीतर जीव है वह कोल्हूका बैल बन रहा है। अब बतलावो जितने श्रम किए जाते, खुदसे खाया भी नहीं जाता, धन संचयकी धुनमें खाली भुस जैसा रूखा सूखा खाया और रात दिन जुतता फिरता, तो यह कोल्हू का बैल जैसा ही तो रहा, तो यह जो जीव है वह कोल्हूका जैसा बैल दूसरोंके आराम के आरामके लिए लदता फिरता है और खुद रूखा सूखा खाता है। तीसरे कविने कहा कि इतनेमें आं गए तरकस बन्द यानै यमलोकसे यमराज अर्थात् अब मरणका समय आ गया तो चौथा कवि यह कहता कि इतनेपर भी राजा भोज कुछ चेतते नहीं हैं, सावधान नहीं होते हैं तो ये मूसरचन्द ही तो हैं। राजाने उन्हें भरपूर इनाम दिया

अपने सम्हालकी सावधानीका स्मरण प्रयोजन यह है कि हम अपनी सम्हाल न करें, दूसरोंकी सम्हालमें ही रहें तो मनुष्य होनेका लाभ क्या है। यों तो सभी जीव व्यवस्थित हैं, कीड़ा मकोड़ा सभी जिन्दा होते हैं, जिन्दा होकर मर जाते हैं, यही मनुष्यका हाल है। कभी मानो इन मायामयी पुरुषोंने कुछ नाम भी गा दिया यश भी कर दिया, कीर्ति भी बोल दी तो इतनेसे भी इसका होता क्या है। यहाँसे मरकर न जाने इतनी बड़ी दुनियामें जो ३४३ घनराजू प्रमाण है, जिसका असंख्यात योजन क्षेत्र है कहांसे कहाँ जाकर किस गतिमें जन्म लें, इसका फिर इस भवमें क्या रहा। तो सबसे बड़ी सावधानी चाहिए अपने आपकी सम्हाल। और, अपनी सम्हाल इसीमें है कि अपने ज्ञानको निर्लेप बनायें, बाह्य वस्तुवोंमें उलझायें नहीं, यथार्थ बोध करते रहें कि घर वैभव मकान आदिक ये सब जड़ वस्तुवें हैं, इनसे मेरा कुछ सम्बंध नहीं। मेरा तो स्वरूप ज्ञान है। ज्ञानस्वरूपकी उपासनामें ही मेरा भला है, ऐसी जीवन दृष्टि बनायें, इसीमें अपने जन्मकी सफलता है।

मंतव्योंमें अपनी–अपनी दृष्टिका प्रयोजन—उस ही ज्ञानकी चर्चा यहाँ चल रही है कि वह ज्ञान कैसा होता है जो हमारे हितकी प्राप्ति कराये और अहितका परिहार कराये। इस सम्बन्धमें जैन सिद्धान्तने बताया है कि वह ज्ञान प्रमाण है जो स्व और अन्य अर्थका निश्चय कराये। यह पदार्थ ऐसा ही है और, जो यह मैं जान रहा हूँ यह ठीक ही जान रहा हूँ ऐसा स्वमें और परपदार्थके बोधमें जिसकी दृढ़ता हो वह ज्ञान प्रमाण है। इसपर क्षणिकवादी यह कहते कि निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण है। जिसका कुछ निश्चय न हो ऐसा प्रथम ज्ञान प्रमाण है तो उसपर ये सब प्रसंग चल रहे हैं। देखिये दार्शनिकोंकी एक अपनी–अपनी दृष्टि होती है। क्षणक्षयवादियोंने इस बातमें भला समझा कि हम यह समझ जायें कि प्रत्येक पदार्थ एक–एक क्षण ही रहता है तो हमारे रागद्वेष न जगेगा क्योंकि पदार्थ क्षणभंगुर हैं, नष्ट हो गया। अब अन्य–अन्य आत्मा हैं तो दूसरे आत्माके मोहमें हम क्यों फसे ? यों मोहसे निवृत्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होनेका उपाय उन्होंने क्षणिकवादको समझा है लेकिन उस क्षणिकवादमें ज्ञान व्यवसायात्मक नहीं बन सकता क्योंकि ज्ञान जब उनका एकस्वभावी है, अभ्यास स्वभावी है ही नहीं, निश्चयात्मक है ही नहीं तो वह दुनियाको पंथ क्या बनावेगा ?

स्वयंके स्वभाव विना परभावकी व्यावृत्तिकी अयुक्तता—यदि यह कहें कि अन्ययोगव्यावृत्ति होनेसे वह ज्ञान विकल्पको उत्पन्न कर देगा तो जब स्वयं ज्ञानमें निर्णय नहीं पड़ा है तो अनिर्णयकी व्यावृत्ति क्या ? जैसे अग्नि है अग्निमें उष्णता है और शीतकी निवृत्ति है तो जब अग्निमें उष्णताका गुण है तभी तो ठंढ उससे अलग है। अब अग्निमें गर्मीका गुण न मानें और कहें कि ठंढसे यह दूर है तो कोई यह भी कह दे कि यह गर्मीसे भी दूर है तब भी अनाप सनाप बात हुई। पदार्थमें जो उसमें निजी स्वभाव पड़ा हुआ है। ज्ञान है, ज्ञानका काम जानना है। जाननेमें निर्णय अवश्य पड़ा हुआ है। जो ज्ञान निर्णयात्मक है उससे तो व्यवस्था बनती है और जो ज्ञान निर्णयात्मक नहीं है उससे कुछ भी व्यवस्था नहीं है।

सुखका साधन देखिये जितना भी सुख है वह सब ज्ञानका सुख है. परवस्तुवोंका सुख नहीं है। परवस्तुके संचयमें भी जो सुख माना जा रहा है वह एक प्रकारका ज्ञान बनाया ऐसा कि मैं अब महान हो गया हूँ. सम्पन्न हो गया हूं, मैं सबसे पूर्ण हूँ। जिस किसी प्रकारका ज्ञान बने ज्ञानका उसे आनन्द आ रहा है। चीजसे आनन्द नहीं आता, कहीं ईंट पत्थरमें आनन्द भरा है क्या ? इन जड़ पत्थरोंसे कभी आनन्दकी किरण निकलती देखी है किसीने ? वे बाह्य पदार्थ हैं, पुद्गल जड़स्वरूप हैं, इनमें आनन्द गुण है ही नहीं, वहाँ आनन्द क्या आयगा ? जब जीव मोहवश होता है तो यह मोहमें, ममतामें, संचयमें आनन्द समझता है, इन्द्रियविषयोंके उपभोगमें आनन्द समझता है लेकिन वह आनन्द क्या आनन्द है जो शुभकर्मके आधीन हो, अनेक पदार्थोंके वश हो फिर भी मिट जाय और आगामी कालके लिए कर्म बंध जाय जाय दुर्गतिको प्रदान करे। ये इन्द्रियोंके सुख क्या वास्तवमें सुख है ? यही एक ज्ञान बना, कभी इन्द्रिय सुखसे रुचि हट जाय तो इस प्रयत्नको आप धर्म समझिये।

धर्मपालन—कोई प्रभुकी भक्ति भी करें और विषयसुख ज्योंके त्यों चाहें तो वहाँ धर्मपालन क्या किया ? धर्मपालन विषयसुखोंसे निवृत्त होकर अपने आनन्द स्वरूप आत्मतत्त्वके दर्शनमें सन्तुष्ट रहें यही है धर्मपालन। प्रभुका स्वरूप केवल ज्ञानमय है। जैसे हम पदार्थोंमें कुछ तत्त्व निरखते हैं खोजते हैं ऐसे ही हम भगवानमें कुछ स्वरूप खोजें तो क्या मिलेगा ? केवल ज्ञान ही ज्ञान। मात्र जानन ही जानन मिलेगा जहाँ केवल प्रकाश हो, जिसमें समस्त लोक और अलोक ज्ञात हो रहे है वही प्रभुका स्वरूप है। यह शरीरका आवरण एक बहुत बड़ा विघातक आवरण है। हम देहमें आत्मबुद्धि करते हैं कि सही बुद्धि हमारी उल्टी हो जाती है। मैं हूँ ज्ञानस्वरूप, देह-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रूप नहीं हूं लेकिन जहाँ लगता कि मैं यही हूं, जो शरीर लदा है यही मैं हूं जब यह जाना तो स्व और परका भेद बनने लगा। जो हमारे इन्द्रियके विषयोंमें साधक बने उन्हें तो मान लेते कि ये भिन्न हैं और जो इन्द्रिय विषयोंमें बाधक बनें उन्हें मान लेते कि ये शत्रु हैं। सारी विपदाओंकी जड़ इस शरीरको आत्मा मानना है।

शान्तिलाभका उद्यमन शान्तिके मार्गके लिये मौलिक ज्ञान यह बनाना आवश्यक है कि देह मैं नहीं हूँ। इन इन्द्रियोंका संयम करके ये इन्द्रियाँ जिन विषयों में लगती हैं उन विषयोंको रोककर हम कुछ सुनना नहीं चाहते, कुछ भोगना नहीं चाहते, फिर शान्ति कैसे प्राप्त हो। इन इन्द्रियोंके कार्यसे हटकर बड़े विश्रामसे अपने आपकी ओर झुककर अपने ज्ञानमें रहें तो ऐसा अपूर्वज्ञान प्रकट होता है कि जिस ज्ञानमें आनन्द ही आनन्द भरा है। इस आनन्दका जब तक पता नहीं है तब तक ये इन्द्रियोंके विषय रुचा करते हैं पर इन विषयोंमें सार बात कुछ–कुछ नहीं है। ये विषय तब तक रुच रहे हैं जब तक कोई अलौकिक आनन्द न प्राप्त हो। उस अलौकिक आनन्दकी प्राप्तिके लिए कुछ कष्ट भी करना होगा। कष्ट तो कुछ नहीं होता किन्तु जिन्होंने इसमें प्रवेश नहीं किया उन्हें कष्ट मालूम होता है। कुछ उदारता लानी होगी, कुछ श्रम भी करना होगा, कुछ ढंग भी बदलना होगा। वही मोहका ढंग, वही अपने कुटुम्ब मित्रको ये मेरे हैं ऐसा माननेका ढङ्ग, यह तो जीवका उत्थान कर सकने वाला नहीं है। मनुष्य जन्म पाया तो ऐसा प्रयोग करें जिसमें हमारा कुछ उत्थान हो हमारा भविष्य सुधरे, हम उत्तरोत्तर किसी नये–नये ज्ञान प्रकाशमें आयें, अपूर्व–अपूर्व आनन्द पायें, वह यत्न कीजिए। हम कितना समय अपने विचारमें लगाते हैं और कितना समय परिजन इष्टजनोंके विचारमें लगाते हैं जरा ध्यान तो दीजिए। हम आत्माके ध्यानके लिए क्या तो समय देते हैं, कितना श्रम करते हैं तो सोच लीजिए। मोह ममतामें हमारा कितना समय जाता है सो तो सोच लीजिए।

लगनकी कला—भैया! जीव सभी हैं, ज्ञानी भी पुरुष होते हैं, अज्ञानी भी पुरुष होते हैं। जीवका यह भी गुण है कि किसी न किसी बातमें लगे रहना। अब अज्ञानी जीव लगे हैं व्यर्थके विकल्पोंमें, पर वस्तुवोंके मोहमें और ज्ञानी जन लगे हैं तत्त्वके चिन्तनमें। तत्त्वचिन्तनमें जो आनन्द प्रकट होता है वह आनन्द तीन लोकके इन्द्रियविषय भी प्राप्त हों, तो भी नहीं मिलता। बताया है कि भगवानके कितना आनन्द है? आचार्योंने थोड़ासा यह प्रयास किया है बतानेका कि देखो तीन लोकमें जितने इन्द्र हैं, जितने महापुरुष हैं और जितने आज तक अनन्त कालसे हुए हैं और भविष्यमें जितने भी इन्द्रादिक महापुरुष होंगे उन सबका सुख मिलावो, जितने सुख जुड़ जायें उससे भी अनन्त गुना सुख भगवानके है। वह क्या सुख है? कभी अपने आपमें यह बात आपने देखी होगी कि जब न कुछ खा पी रहे न कोई इन्द्रिय सुख भोग रहे, बड़ी शान्तिके वातावरणमें विश्रामसे बैठे हैं वहाँ जिस जातिका आनन्द

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है उस प्रकारका आनन्द तो स्वादिष्ट विषयोंमें भी नहीं मिल सकता है। आनन्द कहाँ है इसका निर्णय तो पहिले कीजिए। इन्द्रियविषय तो आत्मबलको नष्ट कर देने वाले हैं। आत्माका आनन्द तो निर्मोह रहनेमें है।

धर्म बिना मनुष्यका अर्थ क्या ? यह सारा जगत मोही है. सो मोही जगतमें मोहियोंकी करतूतको महत्त्व दिया जा रहा है। मोही जीव मोह करके ही समझते हैं कि हमने कुछ चतुराईका काम किया है क्योंकि मोही लोग ही उनका सम्मान करते हैं। लेकिन इस जगतसे हम रुचि रक्खें और अपनेको निर्लेप न बना सकें, दृष्टि भी न पा सके तो भला बतलावो कि मनुष्य जन्मकी सार्थकता क्या हुई ? कई बातोंमें तो मनुष्योंसे पशु भी अच्छे हैं। निद्रा लेनेमें मनुष्य घंटों वेहोश पड़ा रहता है। पशु तो जरा सी झपकी ही लगाते हैं, और जरा सी आहट मिलनेपर तुरंत जग जाते हैं। पशु पेट भर जानेपर अहार करनेकी इच्छा नही करते पर मनुष्य पेट भरा होनेपर भी यदि कोई अच्छी चोज मिल जाय तो कुछ न कुछ खानेकी जगह पेट में निकाल लेता है। मैथुन प्रसंगमें भी पशुवोंका कोई सालमें नियत समय होता है पर इस मनुष्यका कोई नियत समय नहीं है। भयकी बात यह है कि पशु निर्भय रहते हैं, उनपर जब कोई लाठी मारे तब वे डरते हैं, पर यह मनुष्य बड़े आरामसे घरमें रहता हुआ भी भयभीत रहता है। कहीं चोर धन न चुरा ले जायें, कहीं कोई छीन न ले कहीं सरकार छीन न ले, न जाने कासे क्या कानून बन जायें, ये सब बातें सोचकर मनुष्य भयभीत रहता है। तो मनुष्य होकर भी क्या किया ? धर्महीन मनुष्य तो पशु समान बताया है।

धर्मकर्तव्यकी दृष्टि—हम धर्मस्वरूप हैं, धर्मकी ओर हमें दृष्टि देना चाहिए आचार्योंने ऐसे–ऐसे ग्रन्थ लिख दिए हैं जिनमें समस्त तत्त्व निचोड़कर भर दिया है। हम उनको न पढ़ें, उनके स्वरूपमें न उतरें, कुछ भी हम समय न दें स्वाध्यायका तो यह तो हमारी कृतघ्नता है। आचार्योंने कितना श्रम किया और हम उनका महत्त्व न मानें, आदर न करें तो यह हमारे लिए अच्छी बात नहीं है। हम स्वाध्यायमें अधिकाधिक उपयोग दें, जो भी ग्रन्थ हमारे ऋषीसंतोंने लिखे हैं उनका अधिकाधिक स्वाध्याय करें तो इससे हम आपको शान्तिका मार्ग भी मिलेगा।

प्रमाणके प्रकरणमें ज्ञानकी प्रमाणताका निर्णय—जगतमें समस्त व्यवस्था प्रमाणसे होती है। दार्शनिक क्षेत्रमें सर्वप्रथम प्रमाणका निर्णय कराया जाता है। प्रमाणका क्या स्वरूप है ? प्रमाणका स्वरूप बताया है जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये ऐसा ज्ञान प्रमाण है तो इस लक्षणपर अनेक दार्शनिकोंने आपत्तियां उठायी थीं। इसका विश्लेषण प्रतिलोम पद्धतिसे किया गया है। स्व और अपूर्व अर्थ का निश्चय कराये वह ज्ञान प्रमाण है। ४ इसमें विशेषक शब्द हैं तो पहिले तो ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर हो विचार किया गया। कोई पदार्थोंका समूह जोड़नेको प्रमाण कहता था। कोई पदार्थोंके और इन्द्रियोंके सम्बन्ध होनेको प्रमाण कहता था कोइ इन्द्रियके व्यापारको हलन चलनको प्रमाण कहता था, कोई आत्माके व्यवहारको प्रमाण तो कहता था पर आत्माको अचेतन मानता था चेतनाका सम्बन्ध होनेपर आत्माको प्रमाण माना था। उन सबका निराकरण किया गया और फिर समर्थन किया कि ज्ञान ही प्रमाण है क्योंकि ज्ञान हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करानेमें समर्थ है।

सविकल्प ज्ञानकी प्रमाणताके प्रकरण—ज्ञानके सम्बन्धमें निर्णय होनेके बाद अब निश्चयात्मकके सम्बन्धमें विचार चल रहा है। जो निश्चयात्मक ज्ञान है वह प्रमाण है। इसपर क्षणक्षयवादियोंने यह बताया था कि निश्चयात्मक ज्ञान कैसे प्रमाण हो सकता है क्योंकि समस्त पदार्थ क्षण–क्षणमें नष्ट होते हैं। पदार्थके निश्चय करनेमें देर लगती है ना, एक ही समयमें निश्चय तो नहीं बनता। तो चूंकि जब निश्चय हुआ और जिसरूपमें निश्चय हुआ तब वह पदार्थ नहीं रहा तो उसे तो असत्य जाना। कल्पनासे विकल्प किया है सही पदार्थका ग्रहण नहीं कर सका प्रमाण, अतएव निश्चय कराने वाला ज्ञान प्रमाण नहीं किन्तु उस ही क्षणमें जो ज्ञान हुआ, जिसमें आकार नहीं झलका, निश्चय नहीं हुआ किन्तु दर्शन मात्र हुआ ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाण है। इस सम्बन्धमें बहुत विचार चला और कब क्षणिकवादी सिद्धान्तको यह कहना पड़ा था कि निर्विकल्प ज्ञान सविकल्प ज्ञानका उत्पादक है। इस कारण निर्विकल्पज्ञानमें प्रमाणता आजी है, अन्यथा जिस ज्ञानमें कुछ झलका ही नहीं, कुछ आकार ही नहीं बना उसको प्रमाण कैसे कहा जाय ?

निर्विकल्प ज्ञानकी विकल्पोत्पादकताकी चर्चा वह प्रत्यक्ष ज्ञान जिसमें कुछ निश्चय नहीं है वह प्रमाण कैसे बन गया ? इस प्रश्नपर क्षणिकवादने यह कहा था कि निर्विकल्पज्ञान प्रमाणको उत्पन्न करता है जिससे विकल्पमें समझ बैठती है अतएव विविकल्पज्ञान सही है और प्रमाण है। तब पूछा गया कि वह विकल्पका उत्पादक किस तरह है। कुछ सम्बन्ध है कि नहीं ? बिना सम्बन्धके ही विकल्प उत्पन्न करे तो देख तो रहे है नेत्रसे और विकल्प कर देवे शब्दका, अन्य चीजका तो उनका यह मंतव्य था कि अभ्यास और वासना आदिकके कारण जिस पदार्थके विषयमें निर्विकल्प प्रत्यक्ष होता है उस ही पदार्थका विकल्प बनता है। तो इसपर भी यह आपत्ति दी गयी थी कि तब तो दर्शनमें दो भेद पड़ गए कोई अभ्याससापेक्ष निर्विकल्प ज्ञान है और कोई अभ्यास रहित निर्विकल्प ज्ञान है। तो ये भेद पड़नेसे निर्विकल्प फिर वह क्या रहा ?

निर्विकल्पज्ञान और सविकल्पज्ञानकी पृथक् दो धाराओंका विचार—प्रत्यक्षभेद दूर करनेके लिए क्षणिकवादी यह कर रहे हैं कि अभ्यास आदिककी अपेक्षा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रखकर या न रखकर दर्शन विकल्पका उत्पादक नहीं है विकल्प तो शब्द और अर्थको विकल्पवासनासे उत्पन्न होता है, अर्थात् जो निश्चयात्मक ज्ञान है वह विकल्प वासनाकी अपेक्षासे उत्पन्न होता है। इसमें वासना लगी है इस कारण यह सारा सविकल्पज्ञान बनता है और वह वासना विकल्प जिससे विकल्प ज्ञान बना वह वासनाविकल्प पूर्व-वासनासे होता है। तो इस तरह दो धारायें हैं। निर्विकल्पज्ञानकी तो स्वतन्त्र धारा है। प्रति समय एक-एक निर्विकल्प ज्ञान होता रहता है। पहिलेसे दूसरेका कुछ सम्बन्ध नहीं है। और इस धारामें जिसमें विकल्प ज्ञान बन रहे हैं, निश्चयात्मक चल रही है वे पूर्व-पूर्व वासनासे विकल्प बनते चले जाते हैं। ऐसा माननेसे उन्होंने अपने प्रत्यक्ष ज्ञानको अभेद और एक स्वभाव रखनेकी कोशिश की है। तो प्रत्यक्षकी संतान तो निर्विकल्प धारामें चली और विकल्पकी संतान वासनाकी धारामें चली, लो यों अब ये विजातीय हो गए दोनों ज्ञान। प्रत्यक्ष ज्ञान तो निर्दोष ज्ञान है और सविकल्प ज्ञान वासना ज्ञान है। तो विजातीयसे अन्य विजातीय उत्पन्न नहीं होता, अतएव हमारे यह दोष न आयगा क्षणिकवादी कह रहे हैं कि कभी अभ्यासकी अपेक्षा रखकर ज्ञान बनता है और कभी अपेक्षा न रखकर बनता है यों प्रत्यक्षके दो भेद माननेकी आपत्ति नहीं आती।

प्रत्यक्ष और विकल्पकी पृथक् संतानधारा माननेपर आपत्ति—इसपर स्याद्वादी सिद्धान्त समाधान देता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि निर्विकल्प ज्ञान विकल्प को उत्पन्न नहीं करता। बहुत समय तक तो यह कह रहे थे कि निर्विकल्प ज्ञान विकल्पका जनक है। जब उसमें आपत्तियां देने लगे तो यह बचाव रखा कि प्रत्यक्षकी संतान और विकल्पकी संतान ये दोनों अलग-अलग हैं। निर्विकल्प ज्ञान विकल्पोंका उत्पादक नहीं होता तो क्षणक्षयवादके ही सिद्धान्तमें अनेक जगह कथन आता है कि प्रत्यक्ष जिस पदार्थके विषयमें विकल्पवासना उत्पन्न करे उस ही का प्रत्यक्ष प्रमाण होता है। तो अनेक कथनोंसे यह स्पष्ट किया है कि निर्विकल्प ज्ञान विकल्पोंको उत्पन्न करता है फिर इस सिद्धान्तका विरोध कैसे दूर किया जायगा।

प्रत्यक्ष और निर्णयकी पृथक् धारा माननेपर रूपादि विषयत्वका अनियम—अब दूसरी बात देखिये, जो क्षणिकवादका प्रत्यक्ष ज्ञान है निर्विकल्प याने जिस किसी पदार्थको देखते ही जब तक कोई विकल्प नहीं उठता कि यह हरा है यह नीला है उससे पहिले जो भी ज्ञान हुआ वह तो क्षणिकवादमें प्रमाणभूत निर्विकल्प ज्ञान है। और, जब जाना कि यह नीला है, हरा है तो वह विकल्प ज्ञान माना और इसे मिथ्या माना, करीबन जैनसिद्धान्तमें कुछ-कुछ दर्शनके विषयसे उनका निर्विकल्प ज्ञान मेल खाता हुआ समझिये तो वह निर्विकल्प ज्ञान विकल्पको तो उत्पन्न करता नहीं तो फिर वासना विशेषसे उत्पन्न हुए विकल्पसे यह कैसे निर्णय हो कि इस प्रत्यक्ष ज्ञानसे रूपका विषय किया? उस निर्विकल्प ज्ञानने क्या किसी पदार्थके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्बन्धमें समझा था, यह निर्णय तो विकल्प ज्ञानसे होता है। आखिर निर्विकल्प ज्ञान भी किसी न किसी पदार्थको विषय तो करता ही है। किसे विषय करता है इस का निर्णय निर्विकल्प ज्ञान क्या करे ? उसके बाद जो सविकल्प ज्ञान हुआ वह निर्णय करता है। अब निर्विकल्प ज्ञानने विकल्पोंसे कोई सम्बन्ध माना नहीं। दो धारायें अलग-अलग मान ली, तो निर्विकल्प ज्ञान कुछ हो और विकल्प बने किसीका ऐसी विडम्बना होने लगेगी। जब उस प्रत्यक्षधारा और सविकल्प ज्ञानसे कुछ सम्बन्ध नहीं है तो क्या यह जरूरी है कि हम आंखें खोलकर कुछ प्रत्यक्ष करें, दर्शन करें तो रूप ही विषयमें आये। आखें खोलकर देखें और रस आ जाय विषयमें, क्योंकि जब निर्विकल्प ज्ञानका सविकल्प ज्ञानसे कुछ सम्बन्ध ही नहीं है तो अटपट विकल्प उत्पन्न होंगे। अथवा मनमें कुछ सोच रहे हैं, साम्राज्यका विकल्प कर रहे हैं और रूपके दर्शन हों फिर तो ये सब बातें निर्विकल्प ज्ञानमें सम्भव नहीं हो सकती। क्षणिकवादियोंने पहिले तो निर्विकल्प ज्ञानको विकल्पका उत्पादक माना, पीछे अब स्वलक्षणमात्र माना

स्याद्वादसिद्धान्तमें उत्तरोत्तर निर्णय व दृढता का विधान— स्याद्वाद सिद्धान्तमें ज्ञानकी दृढताके स्थान जुदे-जुदे चलते हैं। जैन मतिज्ञान ४ तरहका है— अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। उस ही पदार्थके सम्बन्धमें जब हमारा अवग्रह है तब भी वह सविकल्प ज्ञान है। ईहा हुआ तो अधिक निश्चय हुआ, अवाय हुआ तो अधिक निश्चय हुआ और जब धारणा हुई तो अत्यन्त दृढता बनो जिससे स्मृति हुई। तो ज्ञानकी ही वे सब क्रमिक अवस्थायें हैं पर उनमें साकारता है सविकल्पता है, निश्चय है। अवग्रह ज्ञान भी निश्चयभूत नहीं है पर उस ज्ञानमें जितना निश्चय हो पाता है उतना निश्चय है ईहामें फिर और विशेष निश्चय अवायमें और विशेष और धारणा में पूर्ण अभ्यास है। जसे कोई पुरुष सामनेसे आ रहा है, ५० हाथ दूर है, उसे देखकर यह जाना कि कोई पुरुष सामने आ रहा है, फिर और निकट आनेपर जाना कि यह तो हमारा पड़ोसी ही है, फिर और निकट आनेपर जाना कि यह तो हमारा अमुक पड़ोसी ही है, फिर अभ्यासकी लडी लग जाती है जिससे धारणा होती है। ऐसी सर्वत्र अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाकी बात है। अवग्रह ईहा और अवायके होने पर अभ्यासके कारण जब धारणा बन गई तो उसका पूर्ण निश्चय हो जाता है। छद्मस्थ अवस्थामें ज्ञानका प्रयोग किये जानेके बलका उत्पादक है दर्शन। जैसे कोई पुरुष रस्सी फांदता है, तीन चार फिट ऊपर रस्सी आड़े लगा दी, उसे फांदता है तो वह जमीनमें बिना बल लगाये, जमीनकी ओर बिना झुके कूद नहीं सकता। और वह जमीनमें इतना बल लगाता है कि जमीनमें निशान तक बन जाता है, ऐसे ही दर्शनके द्वारा जो जीव आत्माके निकट आया, चाहे इसका पता पड़े या न पड़े लेकिन इस दर्शनसे ज्ञानके लिए बल मिलता है। तो दर्शन ज्ञानका बलधायक हुआ। तो यों दर्शन न तो प्रमाणभूत माना गया है न अप्रमाण। प्रमाण और अप्रमाणकी व्यवस्था ज्ञान में है। तो निर्विकल्प जो ज्ञान है, दर्शन है वह निश्चयात्मक नहीं है इस कारण प्रमाण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है।

प्रत्यक्ष और विकल्पकी पृथक् संतानधारा माननेपर अव्यवस्था–देखिये निर्विकल्प ज्ञान व सविकल्प ज्ञानका एक आधार न माननेपर तथा प्रत्यक्षसंतान व वासनासंतानसे पृथक्–पृथक् उद्भव माननेपर निर्विकल्प प्रत्यक्षमें रूपादिविषयत्वका नियम नहीं बन सकता। इसपर यदि यह कहा जाय कि प्रत्यक्षके सहकारी वासना विशेषसे उत्पन्न हुए रूपादिविकल्पसे प्रत्यक्षके उस विषयका नियम बन जातगा तो इस ही विकल्पसे प्रत्यक्षके स्वलक्षणविषयत्वका भी नियम हो जाय, अन्यथा प्रत्यक्षके रूपादिविषयत्वका भी नियम न होगा, क्योंकि असम्बन्ध व वासनाविशेषकी दोनों विषयोंके प्रसंगमें परिस्थिति है। यदि यह कहो कि निश्चयात्मक ज्ञान रूपादिकका उल्लेखी है, परामर्शी है, विचारक है इससे पूर्वभावी प्रत्यक्षके रूपादिके विषयत्वका नियम बन जायगा, तब ऐसे तो प्रत्यक्षमें शब्दका संसर्ग भी मान लिया जाना चाहिये क्योंकि अन्यथा अर्थात् प्रत्यक्षमें शब्दत्वसे विरोध ही माना जाय तो विकल्प शब्द और वाच्यकी जात्यादिका उल्लेखी नहीं हो सकेगा। यों निर्विकल्पज्ञानकी सिद्धि नहीं बनती।

निर्विकल्प ज्ञानकी प्रमाणसे असिद्धि—निर्विकल्प ज्ञान प्रमाणसे भी सिद्ध नही है। और आत्मा ही अहं प्रत्ययसे सिद्ध है। "मैं हूँ" सबके उपयोगमें "मैं हूँ" का निर्णय बना रहता है। "मैं हूं" तो इस अहं प्रत्ययके द्वारा जो जाना गया वह आत्मा है और वह आत्मा जैसे–जैसे आवरण दूर होते हैं, अभ्यास आदिक बढ़ते हैं वैसे ही वैसे विकल्पोंको उत्पन्न कर लेता है, निर्णय कर लेता है। तो आत्माको ही ज्ञाता माना, प्रमाण माना, यही विकल्पोंका उत्पादक मान लीजिए। अदृष्ट विकल्प बनाना या अन्य–अन्यकी कल्पना करना व्यर्थ है और वह प्रतिभास स्वरूप है। जैसे अन्य–अन्य पदार्थोंका लक्षण उनमें पाया जाता पुद्गलमें रूप रस गन्ध स्पर्श, ऐसे ही आत्मा का लक्षण प्रतिभास स्वरूप है प्रतिभास मात्र है। तो प्रतिभासस्वरूप आत्मामें जो सामान्य प्रतिभास है वह दर्शन है और जो विशेष प्रतिभास है वह ज्ञान है। विशेष प्रतिभाससे प्रमाण और अप्रमाणकी व्यवस्था है। सामान्य प्रतिभास विशेष प्रतिभास का बलाधायक है, एक बल उत्पन्न करने वाला है। उससे विकल्प प्रमाण हुआ। इस तरह आकार आदिका प्रतिभास और यथार्थ निर्णय यही प्रमाणभूत है क्योंकि साकार ज्ञान संवादक है, झगड़ा मिटाने वाला, निर्णायक यह है। ओर, पदार्थके जानने में साधकतम तो विकल्पात्मक ज्ञान है। पदार्थका निर्णय कैसे होगा ? उसका आकार प्रकार युक्ति स्वरूप इन सबका निश्चय होनेसे ही पदार्थका ज्ञान होता है।

सविकल्प ज्ञानके ही प्रमाणत्वका स्पष्ट अवगम—और भी देखिये, साकार ज्ञान ही अनिश्चित अर्थका निश्चयात्मक होता है। जो चीज अभी तक समझमें न आयी उसको समझाने वाला ज्ञान है। अनिश्चित अर्थका निश्चय ज्ञान कराता है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अतएव ज्ञान प्रमाण है। चौथी बात प्रमाताके द्वारा जाननेके लिये अपेक्षणीय ज्ञान ही है ज्ञानकी अपेक्षा है तो प्रमातासे ज्ञान होता है इसी कारण सविकल्पज्ञान प्रमाण नहीं है, क्योंकि जो विशेषतायें सविकल्पज्ञानको प्रमाण माननेमें ही निर्विकल्पज्ञान उनसे उल्टा है। सविकल्पज्ञान सम्पादक है निर्विकल्पज्ञान सम्पादक नहीं है। सम्पादक मायने बताने वाला। यह निर्विकल्पज्ञान पदार्थके जाननेमें साधकतम नहीं है। यह निश्चय भी नहीं कराता, आत्माके द्वारा अपेक्षणीय भी नहीं है। तो निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण नहीं है। जैसे अन्य अन्य कारक साकल्य सन्निकर्ष इन्द्रिय व्यापार आत्म व्यापार ये अज्ञानरूप चीजें प्रमाण नहीं है इसी प्रकार निर्विकल्प ज्ञान भी प्रमाण नहीं है,

सविकल्प ज्ञानके अप्रमाण माननेमें कारणोंके प्रश्न— क्षणक्षयवादमें सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण माना है। तो उनसे यह पूछा जाय कि सविकल्पज्ञानको अप्रमाण क्यों कहा ? क्या हेतु है ? क्या वह सविकल्पज्ञान स्पष्ट आकारसे रहित है इस कारण अप्रमाण है ? अथवा सविकल्पज्ञान ग्रहीत किए हुए अर्थको ग्रहण करता इसलिए अप्रमाण है ? या सविकल्प ज्ञान असत् पदार्थमें लग रहा है इस कारण अप्रमाण है या सविकल्पज्ञान हितकी प्राप्ति और अहितके परिवार करनेमें समर्थ नहीं हो रहा है इसलिये अप्रमाण है ? अथवा सविकल्पज्ञानमें कभी कभी विसम्वाद भी हो जाता, संदेह आदिक भी हो जाता क्या इसलिये अप्रमाण है ? विकल्पज्ञान कभी कभी संशय, विपर्यय, अनध्यवसायका परिहार नही कर पाते क्या इस कारण अप्रमाण है ? या वह स्वलक्षणको विषय नहीं कर पाता इसलिये अप्रमाण है ? या शब्दके और अर्थके सिंसर्ग योग्य प्रतिभास करता इसलिये अप्रमाण है या शब्दसे उत्पन्न हुआ अतएव अप्रमाण है ? या ग्रहण किए पदार्थके बिना ही उत्पन्न हो गया इस कारण प्रमाण है ? इतने ये १० विकल्प उठाये गये कि सविकल्प ज्ञानको तुम अप्रमाण क्यों कहते ?

स्पष्टाकार विकलत्वके हेतुसे सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण माननेका निराकरण—अब उक्त विकल्पोंका समाधान सुनियेगा। क्या सविकल्प ज्ञान इसलिये अप्रमाण है कि सविकल्प ज्ञानमें स्पष्ट आकार नहीं झलकता ? यदि ऐसा कहते हो तो प्रथम तो यह बात है कि स्पष्ट आकार तो सविकल्प ज्ञानमें ही प्रतीत होता है। निर्विकल्प ज्ञानमें तो आकार कुछ प्रतीत नहीं होता। और दूसरी बात यह है कि स्पष्ट आकार नहीं झलकता इस कारण कोई अप्रमाण नहीं हुआ करता। जैसे एक कांच आड़े आ गया है और कांचके बाहरकी चीज दूसरे भागकी चीज समझमें तो आती है मगर स्पष्ट आकार नहीं आ पाता। कोई कोई कांच तो कुछ साफ होता है कुछ साफ भी नहीं होते तो यद्यपि स्पष्ट आकार नहीं जान पाया, लेकिन उस कांच की दूसरी तरफ दिखा हुआ जो पदार्थ है वह सही हमने देखा वही पदार्थ है। तो स्पष्ट आकार न आने पर भी वह प्रमाण पाया जाता है क्योंकि प्रमाण वह ज्ञान होता जो अज्ञात वस्तुको प्रकट करदे। हमने कांचमें से देखा तो अज्ञात वस्तु जो देख ली, जो

http://sahjanandvarnishastra.org/

अब तक न जाना था उस वस्तुको तो हमने जान लिया ना, तो प्रमाण हो गया स्पष्ट आकार चाहे न भी झलके। तब भी प्रमाण है और बात यह सीधी है कि सविकल्प ज्ञानमें स्पष्ट आकार प्रतीत होता, निर्विकल्प ज्ञानमें तो कुछ पता ही नहीं पड़ता।

स्पष्टाकार विकलत्वका हेतु देकर निर्णयात्मक ज्ञानको अप्रमाण माननेपर तृतीय आपत्ति – स्पष्टाकार विकलताकी दुहाई देकर सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण माननेपर तीसरी विपदा यह आयगी कि स्पष्ट आकारसे रहित दोंद देनेके कारण सविकल्पज्ञानको प्रत्यक्ष तो तुम मान नहीं रहे क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान निर्विकल्प होता है क्षणक्षयवादियोंके यहां और वह सविकल्प ज्ञान अनुमान भी नहीं है क्योंकि अनुमान होता है साधनसे। जैसे पर्वतमें धुवां निकल रहा हो तो धुवांको देखकर अग्नि का ज्ञान कर लेना अनुमान है। तो अग्निके ज्ञान करनेका साधन हुआ धुवां, सो स्पष्ट आकारसे रहित जो यह सविकल्प ज्ञान हो रहा है वह साधनसे भी उत्पन्न नहीं होता और प्रत्यक्ष भी नहीं होता और है जरूर वह ज्ञान। तो यह तीसरा ज्ञान बन बैठेगा। बौद्धोंने दो ज्ञान माने हैं प्रत्यक्ष और अनुमान। प्रत्यक्षमें तो माना निर्विकल्प प्रत्यक्ष और अनुमानमें माना साधनसे साध्यका ज्ञान। अब देखिये साधनसे साध्यका जो ज्ञान होता वह भी इनके यहाँ प्रमाण है, और जिसमें कोई निर्णय ही नहीं है ऐसा निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण है। तो कितनी विपरीत बात है कि एक तो हमारा बाहरका अनुमान, वह तो प्रमाण बन गया, पर यह सविकल्पज्ञान प्रमाण नहीं है जिसके द्वारा आकार झलके रूप झलके निर्णय हुए बिना ज्ञान प्रमाण नहीं है। तो यह युक्ति भी संगत नहीं है कि स्पष्ट आकारसे रहित होनेसे सविकल्प ज्ञान अप्रमाणिक हो गया।

गृहीतार्थ ग्राहिताका हेतु देकर सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण माननेका निराकरण क्षणिकवादी निर्विकल्प ज्ञानको तो प्रमाण मानते सविकल्पज्ञानको अप्रमाण मानते, इसपर उनसे पूछा जा रहा है कि सविकल्प ज्ञान अप्रमाण क्यों है? क्या सविकल्पज्ञान गृहीत अर्थका ग्रहण करने वाला है इस कारण अप्रमाण है? यदि गृहीत अर्थका ग्रहण करने वाला होनेसे सविकल्पज्ञान अप्रमाण हो जायगा सो अनुमान भी अप्रमाण बन बैठेगा। ग्रहीतग्राहीका अर्थ यह है कि जिस पदार्थको ज्ञानके द्वारा एक बार ग्रहण कर लिया उस ही पदार्थको फिर जाने तो उसको ग्रहीतग्राही कहते हैं जाने हुए को जानना ग्रहीतग्राहिता है। यद्यपि ग्रहीत ग्राही ज्ञान अप्रमाण भी हुआ करते, पर जिस रूपमें ग्रहण किया है उस ही रूपमें अन्य ज्ञानोंसे ग्रहण किया करे तो अप्रमाण है। जैसे जितने ढंगसे हमने इस चौकीको जाना फिर बारबार यह चौकी है यह चौकी है यह ज्ञानकी रटन लगाते रहें तो वे सब ज्ञान अप्रमाण हैं, लेकिन जो ग्रहण किए हुए पदार्थमें कुछ और विशेषताके साथ जानें तो अप्रमाण नहीं है। जितने अंशमें गृहीतको ही जानते रहें तो वह अप्रमाण कहलाता है। यदि गृहीतको ग्रहण करनेके कारण सविकल्पज्ञान अप्रमाण बन जाय तो अनुमान बन जाय तो अनुमान भी अप्रमान बन बैठेगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गृहीतार्थ ग्राहिके कारण निर्णयात्मक ज्ञानको अप्रमाण माननेपर आपत्तिका विवरण–क्षणिकवादी पुरुष दो प्रमाण मानते हैंप्रत्यक्ष और अनुमान भी अनुमानअ प्रमाण बनजायगा ऐसी आपत्ति गृहीतग्राहीकोअ प्रमाण माननेपर दी जारही है। अनुमान ज्ञान कैसे गृहीत ग्राही है ? यों है कि जिस किसी भी पदार्थका हम अनुमानसे पहिले उसकी व्याप्तिका ज्ञान करना पड़ता है। जैसे पर्वतपर धुवा देखकर अग्निका अनुमान किया जाता। इस पर्वतमें अग्नि होनी चाहिए ? धुवां दिखनेसे। तो ऐसा ज्ञान करनेसे पहिले यह ज्ञान हो चुका था कि जहाँ जहाँ धुवां होता है वहाँ वहां अग्नि होती है। अथवा जहां अग्नि नहीं होती वहां धुवाँ नहीं होता। तो यह व्याप्तिज्ञान पहिले हो चुका था तब अनुमान ज्ञान बना। व्याप्तिका ज्ञान हुए बिना अनुमान ज्ञान नहीं हो सकता। तो व्याप्तिज्ञान और उससे सम्बन्धित जो भी सम्वेदन हो उससे पहिले अग्निको जाना कि नहीं जाना। जाना उसी ग्रहीतअर्थको फिर अनुमानने जाना तो यह अप्रमाण बन बैठेगा ना। यदि इस सम्बन्धमें यह कहा जाय कि व्याप्तिज्ञानसे और ढंगसे अग्निका ज्ञान किया एक तार्किक रूपसे कि जहाँ धुवां होता है वहां अग्नि होती है पर व्याप्तिज्ञानमें यह तो नहीं ज्ञान होता कि पर्वतमें अग्नि होनी चाहिए। अनुमानसे यह ज्ञान किया कि पर्वतमें अग्नि होनी चाहिये। इस व्याप्तिज्ञानसे जिन ढंगसे अग्नि जानी गयी उससे विलक्षण ढंगसे अनुमानसे जानी अतएव वह समान गृहीतग्राही नहीं हैं। इस तरह अनुमानको अप्रमाणतासे बचानेकी बात कहोगे तो यही बात सविकल्पज्ञानमें भी है। सविकल्पज्ञान उत्तरोत्तर जिस दृढ़ताके साथ पदार्थको जानता रहता है उसमें नई नई बात रहती है। तो गृहीतग्राही होनेसे सविकल्प ज्ञान को अप्रमाण नहीं कह सकते। और, गृहीतग्राही होनेसे सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण कहेंगे ही तो अनुमान भी अप्रमाण बन बैठेगा और फिर तुम जो क्षणक्षयका अनुमान किया करते हो, समस्त पदार्थ क्षणिक हैं। क्यों ? सत् होनेसे। तो क्षणक्षयके अनुमानकी फिर प्रमाणता कैसे रहेगी। क्योंकि जिस पदार्थको तुम क्षणिक सिद्ध करते हो उस पदार्थका पहिले तो शब्दरूप आदिका अवभासन करने वाले प्रत्यक्षसे ग्रहण करते हो और फिर ग्रहण किएमें फिर तुमने क्षणिकपनेको ग्रहण किया तो यह अनुमान भी गृहीतग्राही हुआ ना, तो तुम्हारा अनुमान भी अप्रमाण है।

गृहीतार्थग्राहिताके कारणक्ष णक्षयके अनुमानकी अप्रमाणता – क्षणिकवादियोंका यह सिद्धान्त है कि जिस वस्तुको हम यहाँ क्षणिक सिद्ध करना चाहते हैं तो क्षणिकपना तो सिद्ध किया जायगा अनुमानसे और उस वस्तुका प्रत्यक्ष हो जायगा पहिले ऐसा होता भी तो है ना। जैसे हम यह सिद्ध करें कि यह कागज अमुक कम्पनीका बना है तो कागज तो प्रत्यक्ष हमें पहिले होगा, बादमें हम और अनुमान करेंगे। तो जिस वस्तुको भी क्षणिक सिद्ध किया जा रहा है अनुमानसे उस वस्तुका प्रत्यक्षसे ग्रहण तो पहिले हुआ ना, फिर किया अनुमान तो क्षणक्षयका अनुमान ज्ञान भी गृहीतग्राही होनेपर भी यदि अनुमान अप्रमाण नहीं बनता तो सविकल्प ज्ञान भी अप्रमाण नहीं बनता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्षणक्षयके ज्ञानकी प्रत्यक्षसे असिद्धि यदि यह कहें कि क्षणिकपना भी हम प्रत्यक्षसे जान जाते हैं तो ऐसा तो किसीको भी विदित नहीं होता। प्रत्यक्ष धर्मी स्वरूपको ग्रहण करता है तो प्रत्यक्षसे धर्मीका, शब्दका ग्रहण होनेपर भी क्षणक्षयका ग्रहण नहीं होता। किसी भी वस्तुका प्रत्यक्षसे ज्ञान करनेपर भी यह विनाशीक है अथवा अन्य प्रकार है यह प्रत्यक्षसे नहीं जाना जाता। उसके लिये अन्य तर्क उठाये जाते हैं। और, फिर प्रत्यक्ष और अनुमानमें तो अन्तर है। प्रत्यक्षने तो शब्दरूपी धर्मीको ग्रहण किया या वस्तुरूपी धर्मीको ग्रहण किया और अनुमानने क्षणिकत्व धर्म को ग्रहण किया तो प्रत्यक्ष और अनुमान एक कैसे हो सकते हैं ? तो गृहीतग्राही होने से तुम सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण नहीं कह सकते।

असत्‌में प्रवर्तन होनेका हेतु देकर सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण मानने का निराकरण—सविकल्प ज्ञान मायने जो पदार्थका निश्चय कराये वह ज्ञान, सो सविकल्पज्ञानको याने निश्चयात्मक ज्ञानको तो माना है क्षणिकवादियोंने अप्रमाण और जो पदार्थका निश्चय नहीं करा सकता और शीघ्र हो गया, एक समसमें हो गया, किञ्चित् झांकी सी हो गई उसे प्रमाण कहते हैं। तो उनसे पूछा जा रहा है कि सविकल्पज्ञानको अप्रमाण क्यों मानते हो ? क्या इसलिये कि सविकल्पज्ञान असत् पदार्थमें प्रवर्तन करता है। तात्पर्य उनका यह है कि जब पदार्थ सत् हुआ तो वह एक समयका हुआ। बौद्धोंका पदार्थ एक समयवर्ती है, नित्य नहीं है। तो जिस समयमें पदार्थ हुआ उस ही समयमें तो हुआ दर्शन निर्विकल्प प्रत्यक्ष, और जब उसके बारेमें कुछ निर्णय बनता है, विकल्प बनता है उस समय पदार्थ रहा नहीं, तो जिस समय विकल्पज्ञान हुआ उस समय पदार्थ नहीं रहा तो असत्‌को विकल्पने जाना। अतएव सविकल्प ज्ञान अप्रमाण है। यदि ऐसा कहते हो तो यह बात भी युक्त नहीं बैठती क्योंकि विकल्पोंके कालमें चाहे वह पदार्थ नहीं रहे मगर अतीत कालमें तो रहा, सर्वथा ही किसी कालमें पदार्थ नहीं रहा सत् और उसको जाने तो झूठ कहलाये। परंतु, वर्तमानमें न सही, भूत अथवा भविष्यमें तो सत् रहा। तो वर्तमान कालमें, विकल्पके कालमें असत्त्व होनेपर भी पदार्थ अपने-अपने समयमें तो सत् रहे इसलिए असत्‌में प्रवृत्ति नहीं हुई, फिर भी यदि सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण मानते हो तो प्रत्यक्ष में भी अप्रमाणता आ जायगी क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञानमें भी, प्रत्यक्ष ज्ञानके कालमें प्रत्यक्ष के विषयका असत्त्व पाया जाता है। वस्तुतः एक क्षणमें जो पदार्थ हुआ और दूसरे क्षण नहीं रहा तो उस ही समयमें प्रत्यक्षज्ञान भी प्रवृत्त नहीं हो सकता। समय एक सेकेण्डका असंख्यातवां हिस्सा है, और उस समयमें छद्मस्थोंके किसी भी ज्ञानकी सकल बन जाय तो यह नहीं हो पाता। अतएव असत्‌में प्रवर्तन होनेसे सविकल्प ज्ञान अप्रमाण है यह कहना तुम्हारा ठीक नहीं बैठता।

हिताहितप्राप्तिपरिहारकी असमर्थताका हेतु देकर सविकल्प ज्ञानको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अप्रमाण माननेका निराकरण -- क्या सविकल्प ज्ञानको इस कारण अप्रमाण कहते हो कि वह हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार नहीं करा सकता ? जो ज्ञान हितकी प्राप्ति न करा सके और अहितका परिहार न करा सके वह तो अप्रमाण होता ही है। क्या इस कारणसे सविकल्पको अप्रमाण कहते हो ? तो यह बात तो अत्यन्त असम्भव है। हितकी प्राप्ति सविकल्पज्ञानसे ही होती है। निर्विकल्पज्ञान जिसमें कुछ निर्णय ही नहीं बसा, कुछ आकार प्रकार ही नहीं ज्ञात होता उससे क्या हितकी प्राप्ति हो। इष्ट अर्थकी प्रवृत्ति होना, इष्ट अर्थकी जानकारी होना अथवा प्राप्ति होना और अनिष्ट अर्थ का हट जाना ये सब बातें सविकल्पज्ञानसे ही होती हैं। यदि यह कहें कि सविकल्प ज्ञान होनेपर भी कभी-कभी यह देखा जाता है कि वह ज्ञान भी अर्थको प्राप्त नहीं कर पाता। तो यह बात तो प्रत्यक्षमें भी समान है। जैसे प्रत्यक्ष ज्ञान कितने ही हो रहे हैं पर जिसकी चाह नहीं है जिसके जाननेकी उत्सुकता नहीं है, प्रत्यक्ष ज्ञान हो जानेपर भी उसकी प्राप्ति तो नहीं होती। जैसे रास्तेमें चल रहे हैं तो सैकड़ों आदमी मिलते हैं, सैकड़ों लोगोंका प्रत्यक्ष होता जाता है मगर टिकाव तो किसी पर भी नहीं हो पाता, क्योंकि कुछ अभिप्राय ही नहीं है। उनमें जो इष्ट पुरुष मिल जाय उसपर हमारा टिकाव होता, खबर होती कि वह निकला था यहाँसे। हमने वहाँ जान लिया, चाहे बात चीत भी न करें लेकिन उसकी स्मृति बन जाती है कि अमुक साहब निकले थे। जो सैकड़ों पुरुष दिखते हैं, प्रत्यक्ष होते हैं उनकी किसीको स्मृति नहीं बनती। तो जब किसी वस्तुसे कुछ अभिप्राय नहीं है और वहाँ कोई प्रत्यक्षका ज्ञान सर्वप्रथम हो तो उसमें भी तो अर्थ प्रापकता नहीं है। इसलिए कदाचित् सविकल्पज्ञानसे अर्थकी प्राप्ति न भी हो तो भी वह सविकल्पज्ञान प्रमाण है। निर्णय तो उसमें बसा हुआ है। निर्विकल्प प्रत्यक्षमें तो निर्णय भी नहीं बसा है, वह तो कभी भी हितकी प्राप्तिमें समर्थ हो ही नहीं सकता।

कदाचित् विसंवादकताके कारण सविकल्पज्ञानको अप्रमाण माननेका निराकरण - क्या सविकल्प ज्ञानको इसलिए अप्रमाण कहते हो कि उस ज्ञानमें कभी-कभी विसम्वाद भी हो जाते हैं। जैसे किसी पदार्थको हम बड़े ऊहापोहके साथ जान रहे हैं तिसपर भी कुछ न कुछ विसम्वाद बना रह सकता है। तो कदाचित् विसम्वाद होनेसे सविकल्पज्ञान अप्रमाण है, क्या यह तुम्हारा मंतव्य है ? यदि ऐसा मंतव्य हो तो यह भी ठीक नहीं बैठता, क्योंकि इस तरहसे तो प्रत्यक्षज्ञानमें भी अप्रमाणता आ जायगी। जैसे किसीकी आंखोंपर कुछ थोड़ा बहुत अंधेरा छाया है या अन्य किसी प्रकारका रोग है उसमें पदार्थके न होनेपर भी प्रत्यक्ष प्रवृत्ति देखी जाती है। कभी-कभी आंखोसे देखते हैं तो आकाशमें ऐसा लगता कि केस बिखरे पड़े हैं अथवा छोटी-छोटी मक्खियाँ सी उड़ रही हैं, ऐसे अनेक ज्ञान हो जाते हैं तो वह भी तो विसम्वाद ही है। प्रत्यक्षसे भी तो कहीं विसम्वादरूप बन जाता है पर जिस ज्ञान से विसम्वाद बन जाया करता है और जिससे नहीं भी बनता है तो उससे यह निर्णय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर लेना चाहिए कि जो विसम्वादसे रहित है वह प्रमाण है और जिसमें विसम्वाद बनते हैं वह अभी प्रमाण नहीं हो सकता है। यही बात तुम मानते हो कि प्रत्यक्ष भी दो प्रकारके होते हैं—एक भ्रान्त और एक अभ्रान्त। भ्रान्त और अभ्रान्तमें भेद है। जो अभ्रान्त है वह तो प्रमाण हो गया और जो भ्रान्त है वह अप्रमाण हो गया।

समारोपकी अप्रतिषेधकताका हेतु देकर सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण माननेका निराकरण क्या सविकल्प ज्ञान इसलिए अप्रमाण है कि वह सविकल्प समारोपका प्रतिषेध करने वाला नहीं है ? समारोप तीन होते हैं संशय विपर्यय और अनध्यवसाय। संशय नाम है पदार्थके सम्बन्धमें संकित ज्ञान रहना कि अमुक पदार्थ यह है या यह है, यह सीप है या चांदी। इस प्रकारके संशयमें झूलता हुआ ज्ञान संशयज्ञान है, और किसी पदार्थका उल्टा ज्ञान बन जाना वह है विपर्यय। जैसे पड़ी तो है सीप और उसे दृढ़तासे समझ जायें कि यह तो चाँदी है तो वह विपर्यय ज्ञान हुआ। और, अनध्यवसायज्ञान वह है कि कुछ साधारण सा प्रतिभास हो, पर उसके सम्बन्धमें निर्णय कुछ न हो। जैसे चलते हुए जा रहे हैं और अनेक शब्द सुनाई देते हैं उन शब्दोंमें निर्णयकी आकांक्षा ही कुछ नहीं, कुछ निर्णय भी नहीं हो पाता, यों अनेक शब्द सुनते हुए चले जाते हैं, अथवा चलते हुएमें पैरोंके नीचे कितनी ही चीजें आती हैं उनमेंसे क्या सबका निर्णय हो जाता है कि यह तृण छू गया, यह अमुक चीज छू गयी ? तो वह अनध्यवसाय ज्ञान है समारोपका निषेधक न होनेसे सविकल्प ज्ञान अप्रमाण है। यह बात तो बिल्कुल असम्भव है। कारण यह है कि सविकल्प ज्ञान ही समारोपको दूर करता है। तर्क वितर्कके साथ पदार्थका जहाँ विशेष निर्णय होता है वही तो समारोपको दूर करता है। निर्विकल्पज्ञानमें तो कुछ प्रतिभास भी नहीं हो पाता समारोपको क्या दूर करेगा ? जैसे कहते हैं लोग कि गिरते हैं सहसवार जो मैदाने जंग चढ़ें। वो तिफ्ल क्या गिरें जो धुटनोंके बल चले। घोड़ेपरसे वह गिरता है जो घोड़ेपर चढ़ता बलिष्ठ है और जो नादान छोटा बालक है वह चढ ही नहीं पाता, सो क्या गिरेगा। तो कभी सविकल्पज्ञानमें समारोप भी बन जाय तो कभी यह जानें कि ऐसे ज्ञानोंमें हो तो समारोप बनता है जो ज्ञान निर्णय भी कर सकता है, पर जिन ज्ञानोंमें निर्णय करनेकी प्रकृति ही नहीं है वे ज्ञान तो समारोप भी क्या प्राप्त करें, जब उनमें आभास प्रतिभास भी नहीं है तो यह भी युक्ति तुम्हारी उचित नहीं है।

व्यवहारके अयोग्यत्वका हेतु देकर सविकल्पज्ञानको अप्रमाण मानने का निराकरण—क्या इसलिए सविकल्पज्ञान अप्रमाण है कि वह व्यवहारके अयोग्य है ? यह भी उपहासका विकल्प है। सविकल्पज्ञान ही व्यवहारके योग्य हो सकता है। वह निर्विकल्पज्ञान जिसमें कुछ निर्णय ही नहीं बसा वह कहीं व्यवहारके योग्य होता होगा। समस्त व्यवहार विकल्पमूलक चलते हैं, निर्णयपूर्वक सारे व्यवहार चलते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। जिस ज्ञानमें कोई निर्णय नहीं बना उससे कोई व्यवहार चल भी सकता है क्या? व्यवहारकी अयोग्यता बताकर सविकल्पज्ञानको अप्रमाण नहीं कह सकते। क्या सविकल्पज्ञान इसलिए अप्रमाण है कि वह अपने स्वलक्षणको विषय नहीं करता ? तो वह बात तो अनुमानमें भी घटित हो सकती है। अनुमान भी एक विशेषका विषय किया करता है, वह सामान्यको विषय नहीं करता तो वह भी अप्रमाण बन जायगा। यहाँ भी गजबकी बात देखिये स्वलक्षण माना गया है ऐसे सामान्यको जिसमें कुछ बात समझमें न आये उसे ही तो सामान्य कहते हैं। जिसमें कुछ विशेष बात समझमें आती वह सामान्य नहीं रहता। तो प्रत्यक्ष एक ऐसे निर्विशेष विषयको ग्रहण करता है कि जिसमें कुछ ज्ञान ही नहीं होता। यद्यपि क्षणिकवादियोंने उसे सामान्य शब्दसे नहीं कहा क्योंकि यदि सामान्य शब्दसे कह दें तो उनमें नित्यता सिद्ध हो जायगी, क्योंकि सामान्य सदा रहता है सामान्य व्यापक रहता है अतएव वह विशेष–विशेषको ही सर्वस्व मानता है। एक समयकी पर्याय वह उनका द्रव्य है, एक अंशका परमाणु वह उनका पदार्थ है, एक प्रदेशका क्षेत्र वह उनका आकाश है और निरंश भाव, डिग्री रहित भाव अविनाभावी परिणाम वह उनका भाव है तो भी ऐसा विशेष मानते हैं जिसमें और विशेषता न बन सके और न कुछ भी व्यापक बन सके, न दो समय ठहरे न दो प्रदेशोंपर ठहरे, न दो परमाणुवोंका समूह दीखे ऐसे दो विशेष माने हैं। तो अनुमान ज्ञान ऐसे विशेषको कहाँ जानता है अर्थात् सामान्यको कहाँ जानता है ? तो वह भी अप्रमाण हो बैठेगा। इससे यह भी नहीं कह सकते कि स्वलक्षणका विषय न करनेके कारण सविकल्पज्ञान प्रमाण है।

शब्दसंसर्गयोग्यप्रतिभासत्वका हेतु देकर सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण माननेका निराकरण—क्या सविकल्पज्ञान इसलिए अप्रमाण है कि वह शब्द संसर्ग के योग्य प्रतिभास करता है ? उसके साथ शब्द भी जुड़ा हुआ है। जैसे हम जिस तत्त्वको जानते हैं उसके जाननेके साथ अन्तर्जल्प भी उठता है तो शब्दका संसर्गके योग्य प्रतिभास करता है। सविकल्पज्ञानसे हम जानते हैं तो उसके साथ–साथ कुछ शब्द रचना भी अन्दर उत्पन्न होती रहती है। क्या इसलिए अप्रमाण है ? यदि इस कारण अप्रमाण कहोगे तो यह बात तो अनुमानमें भी है। अनुमान ज्ञानके साथ साथ शब्द संसर्ग चलता रहता है तो वह भी अप्रमाण बन बैठेगा, क्योंकि अनुमानसे तुमने अप्रमाण माना तो शब्द संसर्ग न बैठे इस कारणसे कोई ज्ञान अप्रमाण हो यह बात बुद्धिमें नहीं जचती।

शब्दमात्र प्रभुत्वके हेतुसे सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण माननेका निराकरण—क्या सविकल्पज्ञान इसलिए अप्रमाण है कि वह शब्दसे उत्पन्न होता है। जैसे किसी भी हम पदार्थ विशेषको विशेष ढङ्गसे जानते हैं तो वह जानना शब्द उठने पूर्वक हुआ करता है प्राय:। भींट जाना तो जाननेके साथ हृदयमें भींट ऐसा शब्द न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बोलते हुए जो उठ जाता है तो क्या शब्दसे उत्पन्न होता है यह सविकल्पज्ञान इस कारण अप्रमाण है ? यदि शब्दप्रभव होनेसे सविकल्पज्ञान अप्रमाण बन जाय जो शब्दका प्रत्यक्ष कराने वाला ज्ञान है तो वह सीधा शब्दसे ही सम्बन्ध रख रहा है। तो जो शाब्दिक प्रत्यक्ष है वह भी अप्रमाण बन बैठेगा इस कारण शब्द प्रभवताके कारण सविकल्पज्ञानको अप्रमाण नहीं कह सकते। और, सीधा तथ्य तो यह है कि सविकल्पज्ञान भी शब्दप्रभव नहीं है।

ग्राह्य अर्थके बिना शब्दमात्रप्रभवताके कारण सविकल्प ज्ञानको अप्रमाण माननेका निराकरण –अब आखिरी विकल्पका और कह रहे हैं। क्या सविकल्पज्ञान इसलिए अप्रमाण है कि ग्राह्य अर्थके बिना केवल वासनासे या शब्दोंसे ही उस सविकल्पज्ञानकी उत्पत्ति होता है। इस तरह अप्रमाण माना गया तो यह तो असिद्ध ही बात है क्योंकि जितने भी विकल्पज्ञान होते हैं वे पदार्थके होनेपर ही होते हैं जो नीला पीला पदार्थ है उसका ही तो विकल्प बनेगा। यदि यह कहो कि किसी किसी जीवके पदार्थके बिना भी विकल्प बन जाता है। जैसे मनमें राज्यकी कल्पना करना। तो यह बात प्रत्यक्षमें भी समान है। कभी–कभी आंखोंसे दो चन्द्र दिख जाते हैं। पदार्थ दो हैं नहीं और दिख गए तो सारे फिर अप्रमाण कर दें क्योंकि एक प्रत्यक्ष अप्रमाण बन गया। तो इस दृष्टिसे भी सविकल्पज्ञानको अप्रमाण नहीं कह सकते। निर्णय यह है कि सविकल्पज्ञान ही प्रमाण है, निर्विकल्पज्ञान प्रमाण नहीं है।

ग्राह्य अर्थके बिना सविकल्प ज्ञान होनेका क्षणिकवादमें मंतव्य— ज्ञान जब होता है तो ज्ञानके निर्णयकी सीमामें सर्वप्रथम जो जानन होता है वह अत्यंत साधारण होता है। उसके बाद फिर विशेष–विशेष होता है। इस पद्धतिके पदार्थ चूंकि क्षणिकवादके सिद्धान्तमें क्षण–क्षणमें नष्ट होता है, उसकी रक्षाके लिए भी यह बात मानी गयी कि वास्तविक ज्ञान तो एक समयमें हुआ निर्विकल्पज्ञान है और जिस ज्ञानमें ये सब निर्णय बने होते हैं कि अमुक चीज यों है ऐसा आकार है, प्रकार है वह सविकल्पज्ञान अप्रमाण माना है क्षणिकवादियोंने। और, ऐसा माननेका हेतु मुख्य उनका यह है कि एक तो निर्णायक ज्ञान जिस पदार्थ सम्बन्धमें निर्णय कर रहे हैं निर्णयके समयमें वह पदार्थ है कहाँ, वह तो नष्ट हो गया। सो अब जो निर्णय बन रहा है वह विषयभूत पदार्थके अभावमें बन रहा है। चीजके रहते हुए निर्णय नहीं होता, और जब निर्णय होता तब चीज नहीं रहती क्योंकि क्षणिकवादका सिद्धान्त है ना। प्रत्येक पदार्थ क्षणमात्र ही ठहरता है तो इसीलिए यहाँ निर्णायक ज्ञान अप्रमाण है, निर्णय करने वाला ज्ञान अप्रमाण है। जो प्रमाण है, चीज है वह तो क्षणिक है। तो इस दृष्टिसे निर्विकल्पज्ञान तो प्रमाण है और सविकल्पज्ञान अर्थात् निश्चय करने वाला ज्ञान अप्रमाण है।

सविकल्प ज्ञानको शब्दमात्रप्रभव माननेका क्षणिकवादमें मन्तव्य व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समीक्षण--दूसरी बात सविकल्पज्ञानकी अप्रमाणताकी युक्तिमें यह है कि सविकल्प ज्ञान सत्य ज्ञान नहीं है अर्थात् निर्णय करने वाले ज्ञानके साथ शब्दकी गुनगुनाहट रहती है। जैसे हम किसी चीजको जानते हैं, उसका निश्चय रखते हैं तो उस निश्चय के साथ-साथ चित्तमें शब्द भी उठ जाते हैं कि नहीं ? जैसे जाना कि यह भींट है, पंखा है जो-जो कुछ हमने जाना उस-उस जाननेके साथ शब्द भी भीतर बोलनेमें आ गए, मुंहसे नहीं बोला मगर मुंह बंद किए हुए भीतरमें बोलनेमें आ जाते हैं। किसी चीजका ज्ञान भी न हो नाम भी न मालूम हो ऐसी अद्भुत अनोखी चीजका ज्ञान कर तो भी उसमें कुछ न कुछ शब्द तो उठते वहाँ भी हैं। आकार प्रकार लम्बाई चौड़ाई ये तो जाननेमें आयी हैं, तो उसके शब्द उठ बैठे। तो विषयभूत पदार्थके बिना और शब्दमात्रसे उत्पन्न होनेके कारण सविकल्पज्ञानको यह अप्रमाण कहते हैं। तो यों सविकल्पज्ञान यदि अप्रमाण कहा जाय तो यह बात तो स्पष्ट असिद्ध है क्योंकि विकल्प भी पदार्थके होनेपर ही होते हैं और विकल्पके समयमें पदार्थ उस प्रकारका न रहा तो भी था तो, सत्त्व तो था। भविष्य कालमें उस प्रकारकी अवस्था भी तो होगी जैसा विकल्प कर रहे हैं। तो सर्वथा सत्का अर्थका अभाव तो नहीं रहा। पदार्थके होनेपर ही विकल्प बनता है। यह हरा है, नीला है ऐसा जो निर्णय बना तो पदार्थ है तब तो निर्णय बना। पदार्थके अभावमें निर्णय नहीं बना।

अर्थप्रकाशकतासे ही प्रमाणत्वकी सिद्धि--यदि यह कहते हो कि कभी कभी पदार्थ न होनेपर भी विकल्प उठ बैठते हैं अतएव विकल्प अप्रमाण हैं तो यों प्रत्यक्ष भी अप्रमाण हो जायगा जैसे किसीकी आंखोंमें ऐसा रोग हो जाता है कि उसे १०-१० चन्द्रमा दीखते है, नेत्र रोग ऐसे होते हैं। अच्छी नजर वालेको भी दो चंद्रमा तो फिर भी दिख सकते हैं। कुछ आंखोंको दबाकर या किसी भी तरह अंगुली आदि लगाकर देखें तो कभी दो चन्द्रमा दिखने लगते हैं। हैं तो नहीं दो चन्द्रमा। तो प्रत्यक्ष भी अप्रमाण बन बैठेगा, सो पदार्थका प्रकाशक होना यह प्रमाण है और-और बातें नहीं बनती।

सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयके एकान्तसे सविकल्प ज्ञानकी अप्रमाणताकी कल्पना--इस सिद्धान्तने विकल्प और शब्द इनका परस्परमें कार्य कारणका सम्बन्ध माना है। कुछ भी निर्णय बनता है तो वह शब्दपूर्वक बनता है और कार्य-कारणपने का क्षणक्षयमें सिद्धान्त बनता नहीं, अतः कार्यकारणपूर्वकता वाला निर्णय अप्रमाण है। यों समझ लीजिए कि जैन सिद्धान्तमें ७ नय कहे हैं--नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय व एवंभूतनय तो इनमें जो ऋजुसूत्रनय है उसका विषय वर्तमान समय मात्र है। जिस समयमें जो पदार्थ है उस समयमें ही उस समयका प्रतिपादन करना यह ऋजुसूत्रनयका काम है। जैसे नैगमनयका तो यह काम है कि पदार्थ न भी हो, आगे पीछे बने उसे भी वर्तमानमें कहें। जसे कोई पुरुष

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रसोई बनानेके उद्देश्यसे कोयला कूट रहा है, उससे कोई पूछे क्या कर रहे हो भाई ? वह कहे कि भाई रोटी बना रहे हैं। अरे रोटी बना रहे कि कोयला कूट रहे हो ? तो वह कोयला कूटना रोटी बनानेके लिए ही तो है। तो हमारी बाहरकी बातोंको भी बताये वह तो नैगमनय है। संग्रहनय बहुतसे पदार्थोंका संग्रह करके बताये। जैसे जीव कहा तो जीवमें सब जीव आ गए। फिर जीवके दो भेद करें संसारी और मुक्त तो यह व्यवहारनय हो गया। भेद करें सो व्यवहार और एकरूप संग्रह या अभेद देखें तो संग्रह। यहाँ तक तो द्रव्यकी बात चली, अब पदार्थकी बात चलती है ऋजुसूत्रनयसे। जिस समयमें जो पर्याय है उसका उस समय प्रतिपादन होना ऋजुसुत्रनय है। इस ही नयके हठमें क्षणिक सिद्धान्त निकला है चूंकि पर्याय एक-एक समयमें नवीन-नवीन होती है और वही एकान्त मान लिया क्षणवादियोंने तो उनका ऋजुसूत्रनय एकान्त हो गया।

सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयके एकान्तमें व्यवहारकी असंभवता- अब देखिये यह कागज यदि जल जाय, जलाया जाय, जल रहा हो तो उस समय क्या यह कहा जा सकता शुद्ध ऋजुसूत्रनयमें कि कागज जल रहा है ? नहीं कहा जा सकता। क्यों नहीं कहा जा सकता ? जो जल रहा है वह कागज नहीं। जो कागज है वह साफ है, वह जल नहीं रहा। तो ऋजुसूत्रनय इतने भेदको प्रकट करता है। प्रश्न—इस नयके माननेसे तो सब व्यवहार खतम हो जायगा ? उत्तर— यदि केवल ऋजुसूत्र ही माने तभी तो व्यवहार नहीं चलेगा। क्षणवादियोंका व्यवहार न चलेगा, पर यहाँ तो ७ नय माने हैं। यह तो एक विषय बताया है कि ऋजुसूत्रनयका यह विषय है। जो बात तथ्यकी है वह बतायी। क्या यह कह सकते हो शुद्ध ऋजुसूत्रनयसे कि यह मनुष्य काला है ? नहीं कह सकते क्योंकि जितना यह सारा मनुष्य है वह सब काला है क्या ? भीतर खून है लाल है, मांस सफेद है, हड्डी सफेद है। तो मनुष्यमात्र यह ऊपरका चाम ही तो नहीं है। मनुष्य तो सवा डेढ़ मनके करीबका ऐसा है। तो जितना मनुष्य है वह समस्त काला नहीं। और, जितना काला होता है दुनियामें वह सब मनुष्य नहीं। तो मनुष्यका और कालेपनका कोई सम्बन्ध ठीक नहीं बैंठता, ऋजुसूत्रनय इसे स्वीकार नहीं करता। तो ऋजुसूत्रनयसे तो व्यवहार भी नहीं चल सकता इसका एकान्तरूप सिद्धान्त है क्षणिकवादियोंका।

सूक्ष्म ऋजुसुत्रनयका विषय और एक आध्यात्मिक मर्मपर प्रकाश— अब शुद्ध ऋजुसूत्रनयका विषय सुनिये— शुद्ध ऋजुसूत्रनयका विषय है तो पर्याय, पर उसमें एक सूक्ष्म है और एक स्थूल है तो सूक्ष्म जो पर्याय है उसे अपन जान ही नहीं सकते। एक समयके परिणमनको केवली जान सकता है, छद्मस्थ नहीं जान सकता। छद्मस्थोंका ज्ञानोपयोग अन्तर्मुहूर्त तक कार्य करता है। जब ज्ञात होता है तब निर्णय होता है कि अमुक वस्तु है। तो अनेक पर्यायोंका समूहरूप पर्यायोंको तो हम जानते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं पर शुद्ध–शुद्ध एक–एक समयकी पर्यायको हम नहीं जानते। इसीसे सम्बन्धित एक आध्यात्मिक रहस्य और परख लीजिए। इस संसारी जीवमें राग पर्याय बन रही है। तो रागका जो अनुभव है, रागका जो एक भोगना हुआ, परिणमन हुआ वह कई समयोंके राग जुड़नेका अनुभव हुआ है अब प्रति समयमें राग परिणमन हो जरूर रहा है और प्रति समयके होने वाले राग परिणमनोंके समूहका भी नाम राग है तो उस स्थूल रागको हमने जान पाया। जब पर्यायोंकी स्थूलरूपता बनती है तब हम अनुभव कर पाते हैं। एक समय मात्रके रागको न हम भोगते हैं न हम जानते हैं। प्रत्येक समयमें राग परिणमन भी चल रहा है पर अनुभव शून्य है।

निर्णायक ज्ञानकी शब्द कारणसे उद्भूति माननेपर आपत्ति–ऋजुसूत्र-नयके एकान्तसे यह क्षणिकवादका सिद्धान्त चलता है। फिर तो कार्यकारण सही सही पदार्थमें नहीं है क्षणिकवादमें किन्तु एक व्यवहारमें कल्पनामें विकल्प और शब्द का कार्य कारण नियम है। तो इस सम्बन्धमें कह रहे हैं कि यदि विकल्प और शब्दमें ही कार्यकारणका नियम मानते हो और निर्विकल्प प्रत्यक्षके साथ किसीका भी सम्बन्ध या कुछ कार्यकारण नहीं मानते तो जब हम प्रत्यक्षसे किसी चीजको हम निरख रहे हैं उस समय जो उस जैसा है उसका स्मरण नहीं होना चाहिए, क्योंकि दूसरी चीजके नामका स्मरण हमने कहाँ किया शब्दोंसे सविकल्प ज्ञान बना इस बात पर आपत्ति दे रहे हैं। शब्दके कारण ही निर्णायक ज्ञान बनता है; तो निर्णायक ज्ञानका आधार शब्द है और शब्दके सहारे ही निर्विकल्प ज्ञानकी जिन्दगी है; ऐसा माननेपर यह आपत्ति कही जा रही है कि हम प्रत्यक्षसे किसी चीजको देख रहे हैं। तो पहिले अनुभवकी चीजके समान जो अन्य चीज है उसकी स्मृति नहीं बनना चाहिये, क्योंकि उसका तो नाम भी नहीं लिया जा रहा है। जिस चीजको हम देख रहे हैं उस देखनेके साथ चित्तमें शब्द उठ गए लेकिन उस चीजके समान जो और चीज है उसका तो शब्द भी नहीं उठा। स्मरण कैसे हो गया?

निर्णायक ज्ञानका कारण शब्द माननेपर दी गई आपत्तिका सदृष्टान्त विवरण – जैसे आप किसी दूकानपर बैठे थे और अपना छाता वहाँ भूल आये। जब आप काफी दूर निकल आये तो किसीको छाता लिए हुए जाते देखकर आपको अपने छाताका ध्यान हो गया। उस समय छाता ऐसा शब्द उठ जाय तो इस प्रकरणमें, तो ईमानदारीकी बात है, क्योंकि आपने उस समय दूसरेका छाता देख लिया, किन्तु भूले हुए छाताका तो नाम नहीं लिया गया, उसका स्मरण कैसे हो गया। अतः शब्द के होनेसे सविकल्पज्ञान बनता है यह बात ठीक नहीं जची। यदि शब्दका और निर्णायक ज्ञानका कार्यकारणका नियम बना हो तो प्रत्यक्षसे देखी हुई चीजकी तरह अन्य चीजका स्मरण न होना चाहिए और जब अन्य वस्तुका स्मरण न हुआ तो उसके शब्दका भी ज्ञान न होना चाहिए। जब नामका भी ज्ञान न रहा तो शब्दके साथ ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का सम्बन्ध भी न जुड़ना चाहिए। फिर कुछ ज्ञान ही न होगा तब न निर्णय ही रहेगा न शब्द ही रहेगा। फिर सारा संसार निर्णयशून्य हो जायगा। तो शब्दका और ज्ञानका कार्यकारण नहीं है।

शब्दके बिना ज्ञानसे अर्थज्ञानकी सिद्धि—दूसरी बात यह बतावो कि पद और वर्ण हैं ना, वर्ण तो कहलाता एक-एक अक्षर और पद कहलाता विभक्ति लगी हुई। जैसे मैं मंदिरमें जा रहा हूँ तो मैं एक पद हुआ, मंदिरमें यह दूसरा पद हुआ। और, वर्ण हैं वहाँ चार। जा रहा हूं यह तीसरा पद हुआ। और, उस तीसरे पदमें भी वर्ण हैं चार। तो पदका और वर्णका जो हमें ज्ञान होता है, कुछ शब्द सुन रहे और सभी वर्णोंका ज्ञान हो रहा तो उन पद और वर्णोंका हमें ज्ञान तब होना चाहिए जब उनका वाचक अन्य नामका स्मरण आये। तुम्हारा तो यह एकान्त हो गया ना कि जब भीतर शब्द उठे, तब पदार्थका ज्ञान हुआ। तो जब हम एक-एक वर्णको जान रहे हैं तो उन वर्णोंका कुछ नाम भी है क्या ? तो बिना नामके जाना, हम उन वर्णोंको जानते हैं कि नहीं ? तो जब हम नामान्तरके ज्ञानके बिना शब्द जानने लगे तो इस तरह शब्दके बिना हम सीधा अर्थको क्यों न जान जायें ?

शब्दज्ञानसे अर्थज्ञानकी भिन्नता—भैया ? वर्तमानमें अपन लोगोंमें बात यह है कि एक तो वासना लगी है और एक अज्ञान जग रहा है। तो ज्ञानके साथ शब्द न जुटे हुए होते, पर वासना भी हमारेमें हैं न, समझ बनी है ना, तो ज्ञानके साथ शब्द भी चल उठते हैं। सर्वज्ञदेवके तो ऐसा नहीं होता, वे तीन लोक और अलोकको जान रहे हैं तो उनके जाननेके साथ-साथ शब्द भी उनमें उठते हों यह बात नहीं है प्रभुके। यह बात हम लोगोंके है। क्योंकि हम लोगोंकी वासना, धारणा इस प्रकार की है कि ज्ञान करनेके साथ ही हम शब्द भी मनमें बोलने लगते हैं, पर यह नहीं समझना चाहिए कि उन शब्दोंके कारणसे यह ज्ञान बना है। ज्ञान तो स्वतन्त्र रूपसे बना है। यदि कहो कि हम शब्दोंका भी ज्ञान करते हैं तो जिन शब्दोंको हमने सुना है उनका हमारे भीतर और नाम उठे तब जानें तो अनवस्था दोष आ जायगा। फिर जो भीतर शब्द उठे, जिन्हें हमने जाना उनका कोई दूसरा नाम होगा, इस तरह नाम-नाममें ही चित्त घूमता रहेगा, प्रकृत अर्थको हम जान ही नहीं सकेंगे। इससे यह निर्णय करना कि शब्दके कारणसे सविकल्पज्ञान नहीं होता, किन्तु आवरणके नष्ट होनेसे ज्ञानावरणके क्षयोपशमके अनुसार हमें पदार्थोंका निर्णय होता है। और, जो निर्णयात्मक ज्ञान है वह तो प्रमाण है और जिसमें निर्णय नहीं बसा है, केवल एक कल्पनाकी चीज है ऐसा निर्विकल्प ज्ञान प्रमाण नहीं है।

व्यवसायात्मक ज्ञानके प्रमाणत्वकी सिद्धि - ज्ञान निर्विकल्प होता ही नहीं। जितने ज्ञान होते हैं सब साकार होते हैं। निराकार तो दर्शन होता है। दर्शन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यों अवश्यंभावी है कि आत्मा है प्रतिभासस्वरूप। और प्रतिभास होता है सामान्य और विशेष, तो जो सामान्य प्रतिभास है वह किसी पदार्थके निर्णयरूप तो है नहीं। तो वह हैं केवल एक आत्मविषयक। और, जो विशेष प्रतिभास है वह निर्णयरूप है तो जो निर्णयरूपज्ञान है वह प्रमाण हुआ करता है। दर्शन न प्रमाण है न अप्रमाण है। यों प्रमाणके स्वरूपके सम्बन्धमें यह सिद्ध किया गया कि जो व्यवसायात्मक ज्ञान है वह प्रमाण है। अव्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाण नहीं है। अर्थात् अनिर्णयात्मक क्षणिकवाद जैसा निर्विकल्पज्ञान वह प्रमाण नहीं है। तो इस प्रकारके स्वरूपमें जिसमें यह कहा गया था कि स्व और अपूर्व अर्थका निर्णायक ज्ञान प्रमाण है, अनिर्णायक ज्ञान अप्रमाण है, इसके कुछ अंशोंके विश्लेषणमें खूब अच्छी तरहसे स्पष्ट कहा गया है।

शब्दाद्वैतवादकी उत्थानिका– पदार्थका निर्णय प्रमाणसे होता है, अतएव प्रमाणके स्वरूपको देखा जा रहा है कि प्रमाण क्या चीज है। प्रकृत बात यह रखी कि जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराने वाला ज्ञान है वह प्रमाण है। इसपर पहिले तो ज्ञानके विरुद्ध ही अनेक मंतव्योंकी बात चली। लेकिन ज्ञानको प्रमाण नहीं मानते वे किन्तु उन सब स्थितियोंको प्रमाण मानते हैं जिनके बिना ज्ञान होना कठिन होता है। जब उन अज्ञानवादोंका निराकरण करके ज्ञानकी व्यवस्था की तो ज्ञानके सम्बन्धमें क्षणिकवादियोंने यह मन्तव्य रखा कि ज्ञान तो प्रमाण मान लेंगे, परन्तु निर्णय करने वाला ज्ञान प्रमाण नहीं है, जो अव्यवसायात्मक है वह ज्ञान प्रमाण है। इस सम्बन्धमें भी पहिले चर्चा हो चुकी। अब शब्दाद्वैतवादी कहते हैं कि हम निश्चय करने वाला भी ज्ञान प्रमाण मान लेंगे लेकिन ज्ञान कुछ अलग चीज नहीं है। क्योंकि जितने भी ज्ञान होते हैं वे सब शब्दोंसे बींधे हुए होते हैं। वे शब्दके साथ तादात्म्य रखते हैं तब ज्ञान होता है। जैसे आप कुछ भी जाने तो जाननेके ही साथ चित्तमें शब्द और उठेंगे, मंदिर जाना, चौकी जाना, चटाई, मनुष्य, पुस्तक आदि कुछ भी जाना तो उस जाननेके ही साथ ही तुरन्त चित्तमें कुछ शब्द उठ बैठते हैं कि नहीं कि यह अमुक है ? तो जब सम्यग्ज्ञानके ही साथ शब्दोंका उठना निरखा जाता है तो यह ज्ञान कुछ अलग वस्तु नहीं है, किन्तु शब्दात्मक प्रत्यय ही ज्ञान है। तो शब्दात्मक प्रत्ययका नाम प्रमाण है, वह खाली कोई ज्ञान नहीं है ऐसी शब्दाद्वैतवादी अपनी बात रख रहे हैं।

शब्दब्रह्मवादके सिद्धान्तकी भित्ति शब्दब्रह्मवादका कथन है कि यदि वे सब प्रत्यय, ये सब जानकारियां यदि शब्दोंका स्पर्श न रखें, ज्ञानमें शब्दोंका साथ न हो तो पदार्थोंका प्रकाश नहीं हो सकता, प्रत्ययमें प्रकाशरूपता नहीं आ सकती। कुछ भी प्रकाश न होगा। जितने भी ज्ञान प्रकाश होते हैं, प्रत्यय होते हैं वे सब ज्ञान शब्दों को साथ लिए हुए ही होते हैं। ऐसा न मानेंगे तो ज्ञानका प्रादुर्भाव हो जायगा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भला कोई ज्ञान ऐसा बतावो कि जैसे किसी मनुष्यको जान तो लिया है पर उसके शब्दका कोई प्रकार न उठा हो अन्तरङ्गमें ? ऐसा कोई ज्ञान न मिलेगा। इस प्रकरणमें ये शब्दाद्वैतवादी अपना सिद्धान्त पक्ष रख रहे हैं विवरण करके कि देखो वचनरूपता तो प्रकारकी होती है एक शाश्वती और एक प्रकाशहेतुभूत। इसकी साधारणतया यह पहिचान समझ लें कि जो हमेशा शक्तिरूपमें, सत्त्वरूपमें वचन है वह तो है शाश्वती वाग्रूपता व जो ज्ञानके लिये शब्द बना करता है वह है प्रकाश हेतुभूतवचनरूपता। इन दोनों वचनोंका अभाव माननेपर फिर ज्ञानका कोई रूप नहीं रहता। शब्दाद्वैतवादी जिस प्रकारका सिद्धान्त रख रहे हैं यह बात छद्मस्थ मनुष्य लोकमें कुछ घटित देखी जाती है। जो कुछ भी हम जानते हैं उसका कोई वचन उठ जाता है।

शब्दब्रह्मवादमें ज्ञानके शब्दात्मकत्वकी दृष्टि जितने भी ये वाचक वाच्य तत्त्व हैं जो कहनेमें आये, जो कहने वाला है, जो समझमें आया, जो समझने वाला है वह सबका सब शब्दब्रह्म की पर्याय है। शब्दके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है। अन्य ज्ञान, अन्य वस्तु या अन्य कुछ भी चीज नहीं है। न किसी अन्य प्रकृति आदिक की परिणति है और न कोई स्वतंत्र कुछ चीज है। जो कुछ वस्तु है वह शब्दसे भरी हुई है। शब्दात्मक हैं। और, देख लो ना, प्रत्येक चीजमें शब्द पड़ा हुआ है। मेरे जाननेमें शब्द है और उस पदार्थमें भी शब्द पड़ा है। सब कुछ शब्दात्मक है। शब्दको छोड़कर लोकमें अन्य कुछ नहीं है। ऐसा कोई ज्ञान नहीं है लोकमें जो शब्दका अनुगमन किए बिना हो। अपने अनुभवसे भी सोच लो क्या कोई ज्ञान ऐसा भी कभी हुआ कि उसके साथ कुछ शब्द उठा न हो, मनमें कोई शब्दरूप चिन्तन न बना हो और चीज ज्ञान हो जाय ऐसा होता भी तो नहीं, अनुभव भी बताता है, ऐसा तो हो जाता है कि कहीं पदार्थ भी कुछ न हो और शब्दोंकी गुनगुनाहट कल्पनाएँ उठ रही हों, ज्ञान हो रहा हो। तो पदार्थके बिना ज्ञान चाहै हो जाये पर शब्दोंके उठे बिना ज्ञान नहीं होता। इसलिए सब ज्ञान शब्दात्मक हैं, मात्र ज्ञान कुछ चीज नहीं है ऐसी शब्दाद्वैतवादी अपनी बात रख रहे हैं।

शब्दब्रह्मवादमें सकल प्रत्ययोंकी शब्दात्मकता—और भी देखिये—यदि शाश्वती वचनरूपता न रहे तो प्रकाशका कारणभूत भी न रहा तो प्रकाश भी नहीं रह सकता। वचन रचनात्मक दो प्रकारके होते हैं। जैसे जैन लोग मानते हैं कि एक द्रव्यशक्ति और एक परिणति। तो ऐसी ही शक्तिरूप जो वचनरूपता है जो सदैव रहा करती है वह तो है शाश्वती वचनरूपता, और जो पदार्थका ज्ञान करानेमें कारण हो कर शब्द उठता है या जो मुखसे बोल दिया जाता है वह सब है प्रकाशानुभूत वचनरूपता। निर्विकल्पज्ञान प्रमाण नहीं है इस बातको तो हम दार्शनिकोंने मान लिया, शब्दाद्वैतवादी दार्शनिक कहते जा रहे हैं किन्तु सविकल्पज्ञान शब्द रचनाके अलावा कुछ है ही नहीं। जो अन्तरङ्गमें शब्द रचना उत्पन्न हुई है वही बस ज्ञान है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और जुदी वस्तु नहीं है। शब्दा मक जो प्रत्यय है वही प्रमाण है।

शब्दब्रह्मवादमें सकल विश्वकी शब्दात्मकता—वह शब्दात्मक तत्त्व अनादिनिधन है, अविनाशी है और वही शब्दब्रह्म जब अर्थ भावरूपसे परिणमता है तो यह सब जगत बन जाता है। ज्ञान बन गया प्रक्रिया बन गई तो सब कुछ एक शब्दब्रह्म है। जो तुम्हें दिख रहे हैं ये सब पदार्थ भी शब्दब्रह्मकी माया हैं। यह समस्त जो कुछ भी जगत है, जिसे लोग कुछ तो ज्ञानरूपमें ग्रहण करते, कुछ अर्थरूपमें ग्रहण करते, यों दो भागोंमें लोग इस जगतको ग्रहण कर रहे हैं—कुछ ज्ञान तत्त्व है और कुछ वस्तुभूत तत्त्व हैं, पदार्थ तत्त्व है, लेकिन न ज्ञान कोई शब्द रचनासे न्यारी वस्तु है और न यह पदार्थ भी शब्द रचनासे न्यारी वस्तु है। सबमें शब्द व्यापक है और जो ज्ञान बनता है वह भी एक शब्द प्रणाली है। तो शब्दब्रह्म अनादिनिधन है क्योंकि उसका कभी उत्पाद व्यय नहीं होता है। शब्दका जो लोग विनाश सा समझ रहे हैं कि लो यह शब्द बोला और यह शब्द मिट गया। तो शब्द मिटता नहीं है, शाश्वत है, सर्वत्र है। उन शब्दोंका इन कर्णादिकसे आविर्भाव होता है याने यह प्रकट होता है और साधनोंके थकनेसे यह शब्द ढक जाता है। पर शब्द कभी उत्पन्न नहीं होता है ऐसा इसका सिद्धान्त है।

शब्दकी नित्यता व अक्षररूपताका वाद—शब्द ब्रह्म है, अविनाशी है, अक्षररूप भी है क्योंकि अकार आदिक अक्षरोंका यह निमित्तभूत है, अतः यही शब्द-ब्रह्म वाचकरूप भी है, और वाच्यरूप भी है, उसका नाम शब्दब्रह्म है, कोई अन्य चीज नहीं है वास्तवमें। और जो कुछ समझमें आया है शब्दब्रह्मसे अर्थात् चाहे ज्ञान समझ में आया, चाहे पदार्थ समझमें आया वह सब भ्रम है। शब्दब्रह्म ही एक तत्त्व है। ऐसी शब्द द्वैतवादियोंने अपनी बात रखी है कि प्रमाण तो ज्ञान है और सविकल्पज्ञान प्रमाण है, पर शब्दब्रह्मसे न्यारा न यह ज्ञान है न पदार्थ है। जो कुछ भी ज्ञान होता है वह चित्तमें शब्दोंकी गुनगुनाहट सहित होता है और सब जगह शब्द ही शब्द पड़े हुए हैं। आकाश सब जगह है और आकाशका ही गुण शब्द मानते हैं तो शब्द भी सब जगह है।

शब्दाद्वैतके मन्तव्यमें साधारण जनोंके ख्यालका मेल—देखिये शब्दा-द्वैतवादमें भी साधारण लोगोंके ख्यालके अनुरूप बात मानी गयी है। जैसे पूछा जाय अच्छा बतावो तो सही रूप किसका गुण है? तो आप झट कह देंगे कि रूप इस भौतिक पदार्थका गुण है, रस, गन्ध, स्पर्श ये सब पुद्गलके गुण हैं। और, शब्द किस का गुण है ऐसा सोचनेमें कुछ अटक आ जायगी। किसका बतायें? और, साधारण-तया सोचनेपर ऐसा मालूम होगा कि शब्द तो एक आकाशमें मालूम होते हैं, आकाश में ही रहते हैं, आकाशसे ही आते हैं तो शब्द आकाशका गुण है ऐसा साधारण लोग ख्याल कर सकते हैं, और इसी कारण शब्द ब्रह्मका मंतव्य निकला है। जब आकाश

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अविनाशी है तो शब्द भी अविनाशी है और अर्थ अथवा ज्ञान सब कुछ शब्दात्मक है। शब्दको छोड़कर न तो ज्ञान कोई चीज है और न शब्दके विकासको छोड़कर यह पदार्थ कोई चीज है। तो शब्दाद्वैतवादियोंने इस शब्दाद्वैतको प्रमाण माना है।

शब्दाद्वैतकी इन्द्रियज ज्ञानसे असिद्धि—अब शब्दाद्वैतके सम्बन्धमें समाधान किया जा रहा है कि शब्दाद्वैतके मन्तव्यमें भी तत्त्वका ज्ञान नहीं कर पाया क्योंकि समस्त ज्ञान शब्दसे बींधे भये हैं इस तरह प्रतिभासमें नहीं आता, क्योंकि सभी ज्ञान शब्दसे बींधे हुए हैं, शब्दसे रचे गए हैं ऐसी बात तुमने प्रत्यक्षसे जाना या अनुभवसे जाना ? यदि कहो कि प्रत्यक्षसे जाना तो प्रत्यक्ष होते हैं दो प्रकारके। एक इन्द्रियज प्रत्यक्ष और एक स्वसम्वेद्य प्रत्यक्ष। तो ज्ञान शब्दात्मक होता है यह बात तुम इन्द्रियसे तो जान नहीं रहे किन्तु स्पष्ट मालूम हो रहा कि इन्द्रियाँ रूप आदिक विषयोंमें निमित्त हैं। आंखोंसे जाना तो रूप जाना, कर्णसे जाना तो शब्द जाना, पर कर्णसे यह तो नहीं जाना कि ज्ञान शब्दात्मक है। नाकसे जाना तो गन्ध जाना, रसना से रस जाना, स्पर्शसे स्पर्श जाना। इन्द्रियसे भी यह कैसे जान सकते हैं। यदि यह कहो कि समस्त ज्ञान शब्दसे बींधे हुए होते हैं अतएव उन पदार्थोंका अनुभव होनेपर भी, ज्ञान होनेपर भी उस ज्ञानमें शब्द भी अनुभवमें आते हैं तो अन्योन्याश्रय दोष आ जायगा। जब ज्ञानकी शब्दानुविद्धता सिद्ध हो तो शब्दानुविद्धत्वका ज्ञान बने और जब शब्दानुबिद्धत्वका ज्ञान हो तो शब्दात्मक अर्थविज्ञानकी सिद्धि हो।

स्वसंवेद्य प्रत्यक्षसे शब्दाद्वैतकी असिद्धि - समस्त ज्ञान शब्दोंसे बींधे हुए हैं यह स्वसम्वेद्यज्ञानसे भी सिद्ध नहीं होता है। स्वसंवेद्यज्ञानका तो विषय ही शब्द नहीं है। स्वसम्वेद्यका विषय है। स्व मायने आत्मा। शब्द विषय नहीं है। यदि यह कहें कि यद्यपि स्वसम्वेद्य ज्ञानका विषय शब्द नहीं है लेकिन समस्त पदार्थ शब्दसे बींधे हुये हैं अतएव उन पदार्थोंका अनुभव होनेपर ज्ञान होनेपर उस ज्ञानमें शब्द भी अनुभवमें आते हैं। तो यह बतलावो कि तुम्हारा जो यह कहना है कि सब पदार्थ शब्दात्मक हैं। समस्त ज्ञान शब्दात्मक हैं तो शब्दात्मकताका अर्थ क्या है ? क्या पदार्थके अभिन्न देशमें शब्दका प्रतिभास होना इसके कारण शब्दात्मकता है या पदार्थ में शब्दोंका तादात्म्य हो गया, एकमेकपना हो गया इसके कारण शब्दात्मकता है ? देखिये अनेक बातें मिली-जुली लगती हैं लेकिन सूक्ष्म जो प्रज्ञा है, तर्क बुद्धि है वह मिली-जुलीको भी न्यारी-न्यारी समझ लेती है। जैसे आममें रूप और रस कोई अलग अलग जगह नहीं हैं, जहाँ रूप है वहीं रस है लेकिन प्रज्ञा छेनी ऐसी पैनी बुद्धि है कि उसमें भी रूप और रसको न्यारे- न्यारे समझ लेते हैं। रस जाना जाता है रसनासे, रूप जाना जाता है आंखोंसे। तो रूप कुछ भिन्न तत्त्व रहा इससे कि नहीं ? और पदार्थमें देखिये तो अलग-अलग कुछ नहीं पड़ा कि उस आममें किसी जगह रूप हो और किसी जगह रस हो ऐसी बात तो है ही नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थक्षेत्रमें शब्द प्रतिभासका हेतु देकर शब्दात्मकताकी सिद्धिका अभाव--ज्ञान व अर्थकी शब्दानुविद्धताका अर्थ क्या है ? पदार्थोंके अभिन्न देशमें शब्दका प्रतिभास होनेका नाम शब्दात्मकता है या पदार्थके साथ शब्दोंका तादात्म्य ही बन गया। पहिली बात तो यों ठीक नहीं कि इस प्रत्यक्षमें सदैव शब्दरहित पदार्थ ही प्रतिभासमें आता है। किसी भी पदार्थको जानते समय दो बातें उत्पन्न हुई हैं तो वे बातें अलग हैं - ज्ञान भी हो रहा है और भीतर शब्दरचनाके रूपमें तर्कणा भी चल रही है तो ये दो काम हो रहे हैं इससे पदार्थ शब्दात्मक हो गए या ज्ञान शब्दात्मक हो गया यह बात सिद्ध नहीं होती। जैसे सामने रहने वाले ये नीले-पीले आदि पदार्थ प्रतिभासमें आते हैं इसी प्रकार उस देशमें शब्द भी प्रतिभासमें आना चाहिए पर आते तो नहीं।

क्षणिकवादमें व्यापक पदार्थका नास्तित्व इस प्रकरणमें एक और नवीन बात जानियेगा कि यह शब्दाद्वैत इस समय क्षणिकवादको दृष्टिमें रखकर कहा जा रहा है। वैसे फर्क तो बहुत है कि शब्द ब्रह्म तो है नित्य व क्षणिकवाद हर एक चीजको छिन्न-भिन्न मानता है, केवल एक समय-समयकी ही बात नहीं, द्रव्य छिन्न है, क्षेत्र छिन्न है, काल छिन्न है, भाव छिन्न है। तो क्षणिक सिद्धान्तमें पदार्थ कुछ नहीं है, पदार्थ मान लें तो वह कोई वस्तु बन जायगी। तो उनसे पूछा गया कि जो कुछ आंखों दिखता है वह क्या चीज है ? तो वे कहते हैं कि हरा, पीला, सफेद यह चीज हैं, पदार्थ नामसे वे न बोलेंगे। जो कुछ यह ज्ञात हो रहा है आंखोंसे वह नीला पीला वगैरह हो रहा है, क्योंकि जितने भी पदार्थके विभाव बनेंगे वे नीले-पीले आदि बनेंगे और कुछ बनेंगे नहीं। ऐसा तो नहीं है कि किसी पिण्डके आधारपर नीला पीलारूप हो और भीतर कोई वस्तु छिपी हो। सब कुछ नीलात्मक ही तो है।

अर्थदेशमें शब्दप्रतिभासका अभाव—देखिये ! यदि अर्थदेशमें शब्दप्रतिभास होनेसे ज्ञान शब्दात्मक हो तो ज्ञानसे जब हम पदार्थको जान रहे हैं तो उसके साथ हमें वहाँ शब्द भी जाननेमें आना चाहिए। जिस प्रकार नील आदिक पदार्थ सामने ठहरे हुये हमारे ज्ञानमें आते हैं उसी प्रकार उस ही देशमें शब्द नहीं आते। शब्द देखो तो श्रोताके श्रोत्र प्रदेशोंमें ज्ञात होते हैं। स्थानका भी भेद है। अन्य देशमें पाया जाने वाला पदार्थ अन्य देशका न बन जायगा, जो जहाँ है वहाँ ही रहेगा। तो ज्ञान अर्थ अभिन्न देशमें शब्दको भी जानता हो ऐसा तो नहीं है। अर्थकी जगह अर्थ जान रहे हैं और कानके प्रदेशोंमें शब्द जाग रहे हैं तो पदार्थ शब्दात्मक कैसे हुए ? तब इनका आधार न्यारा-न्यारा है। नील आदिकका आधार सामने है और शब्दका आधार कर्णप्रदेशमें में है तो फिर यह कहना कि ये सब पदार्थ शब्दात्मक हैं यह कैसे सिद्ध हो जायगा ?

पदार्थमें शब्दके तादात्म्यका अभाव—यदि यह कहोगे कि अर्थके साथ-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

साथ शब्दका तादात्म्य है तो यह भी बात बनती नहीं है। क्योंकि जो भिन्न–भिन्न इन्द्रियों द्वारा जाना जा रहा है वह तो भिन्न विषय है। जिन दो तत्त्वोंका ग्रहण विभिन्न इन्द्रियोंसे होता हो उनमें एकता नहीं हो सकती। जैसे रूप और रस इनमें एकता नहीं है। देखिये स्याद्वाद सिद्धान्तके अनुसार रूप और रसमें एकता है और नहीं भी है। विभिन्न गुण हैं विभिन्न परिणतियां हैं, इसीलिए तो एकता नहीं है, और चूंकि वह पदार्थ रूपात्मक है, वही पदार्थ रसनात्मक है और पदार्थ ही चीज है इसलिए एकता है। लेकिन क्षणिकवादने रूप रसको एक नहीं माना, और रूप रसको क्या, किसी भी दो बातोंको एक मानते ही नहीं क्षणिकवादी। दो समयोंका मेल भी नहीं मानते। घड़ी घंटा आदि नहीं मानते, यह तो सब भ्रम है. परमार्थ चीज तो एक एक समय है। तो जैसे रूप और रस भिन्न–भिन्न इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमें आते हैं अतएव इनमें एकता नहीं है। सो जैसे नील आदिक रूपका रसके साथ एकता नहीं है ऐसे ही नील आदिकके साथ शब्दकी भी एकता नहीं है। और, इस नेत्र इन्द्रियजन्य ज्ञान में ये जो कुछ जाननेमें आ रहे हैं ये समस्त पदार्थ शब्द रहित प्रतिभासमें आ रहे हैं। फिर कैसे पदार्थको तुम शब्दात्मक कहते हो ?

साकार ज्ञानके ही प्रमाणत्वकी सुगम सिद्धि—नेत्र इन्द्रियजन्य ज्ञानमें शब्दरहित नील आदिकरूप ग्रहणमें आ रहा है और कर्ण इन्द्रियजन्य ज्ञानमें शब्द जाननेमें आ रहे हैं। शब्द न्यारे हैं, रूपादिक पदार्थ न्यारे हैं, इनको तुम एक कैसे कहते हो कि पदार्थ शब्दात्मक ही हैं अन्य कुछ नहीं हैं, और ज्ञान भी शब्दात्मक ही है। ज्ञान भी शब्दात्मकताको छोड़कर अन्य कुछ नहीं है यह बात तुम्हारी असत्य है। तो प्रमाण सविकल्प ज्ञान है यही मानना चाहिए और वह सविकल्पज्ञान ज्ञानरूप है शब्दरूप नहीं है। शब्द तो अचेतन है। अचेतनका परिणमन चेतनरूप नहीं हो सकता। ज्ञान जुदी चीज है। यों तो मोही प्राणियोंको देह और ज्ञान ये भी जुदे–जुदे नहीं मालूम पड़ते। शरीर है सो ज्ञान है, शरीर है सो आत्मा है, यों एकमेक मानते जो रागद्वेष मोह आदिक रूप हो वही मैं आत्मा हूँ। तो एक प्रतिभासमें आ जानेके कारण एकता आ जाय सो सत्य नहीं है। यों अर्थमें और शब्दमें भेद है। ज्ञान ज्ञानरूप ही है, ज्ञान शब्दरूप नहीं है।

शब्दात्मक प्रत्ययके प्रमाणत्वकी सिद्धिका उपक्रम—निर्विकल्पज्ञानको क्षणिकवादी प्रमाण मानते थे, उसके निराकरणके बाद शब्दाद्वैतवादी कह रहे हैं कि यह तो बात बहुत ठीक है कि जो निराकार ज्ञान है वह प्रमाण नहीं हो सकता। साकार ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है। जिस ज्ञानमें कुछ आकार प्रकार रूप रूपक शकल कुछ आया हो वह ज्ञान प्रमाण है। यह ठीक है लेकिन शब्द रचनासे अत्यन्त न्यारा ज्ञान तो कुछ होता ही नहीं। जैसे लौकिकजन जो कुछ ज्ञान करते हैं तो अंदर में उस जातिके शब्द उठते हैं। भींट निरखो तो भीतरमें भींट यह शब्द बिना बोले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही कुछ अन्तरङ्गमें उठे हुएसे लगने लगते हैं। जैसे किसी अपने परिचित मनुष्यको देखा तो मनुष्यसे कुछ भी नहीं बोला लेकिन अन्दरमें उसका नाम कुछ बनने सा लगता है। तो जितने भी ज्ञान होते हैं, वे सब शब्दात्मक हुआ करते हैं। बोलें अथवा न बोलें, ऐसे विचारसे शब्दब्रह्मवादी यह सिद्ध करना चाहते हैं कि सब कुछ शब्दात्मक है। पदार्थ सब शब्दात्मक हैं। जो ज्ञान बनता है वह ज्ञान शब्दात्मक है। शब्दसे अलग न कोई पदार्थ है न कोई ज्ञान है।

पदार्थमें शब्दरूपताकी असिद्धि —शब्दाद्वैतवादके निराकरणमें अभी बहुत सी युक्तियाँ दी गयी थीं और यह सिद्ध किया गया था कि किसी भी मनुष्यको आँखों के द्वारा रूहके देखनेपर वह पदार्थ शब्दरूप भी है, ऐसा कोई नहीं जानता, किन्तु केवल रुपको जानता है नेत्रसे, शब्दमय नहीं है। नेत्रसे जो दीखा और नीला हरा वगैरह जो जाना तो इस जाननके साथ भीतरमें शब्द उठे यह बात तो किन्हीं किन्हीं जीवोंके है, सबके फिर भी नहीं हो सकती। कोई भले ही रूप आदिकके ज्ञानके साथ साथ शब्दका भी ज्ञान करले। चूंकि वासना बनी हुई है इसलिए शब्द उठते हैं मगर ज्ञान शब्दसहित नही है। ज्ञान शब्दरहित ही है। पदार्थ जो जाननेमें आया वह शब्द-जाननेमें आया। शब्द भले ही ज्ञानके साथ भीतरमें उठ गए, इसी बातको लक्ष्यमें लेकर शब्द ब्रह्मवादी कह रहे हैं कि पदार्थ भी शब्दरूप है, ज्ञान भी शब्दरूप है, तो उनसे पूछा गया कि जब नेत्रसे हम रूपको देखते हैं तो रूपके साथ शब्दकी एकता तो नहीं समझमें आती। शब्द श्रोत्र इन्द्रियसे जाने जाते हैं, रूप नेत्रसे जाना जाता है। जब भिन्न इन्द्रियसे ज्ञात होने वालीं दो चीजें हैं तो वे एक कैसे हो जायेंगी ? यदि एक हों तोजिस नेत्रसे नीला पीला रूप देखा तो उसके साथ वे शब्द भी सुननेमें आने चाहियें। तो रूपमें और शब्दमें एकता तो नहीं है, भिन्न-भिन्न चीज है।

पदार्थके शब्दात्मकत्वके मन्तव्यमें दो विकल्प—यदि कहो कि रूपको देखते ही भीतर ऐसा तो ज्ञान होता है—'इदं रूपं' यह रूप है, तो शब्द तो तुरन्त उठे ना ! तो इस प्रकार शब्दके विशेषण रूपसे पदार्थका ज्ञान बनता है। पदार्थको जाना तो शब्द विशेषणके जाननेके साथ ही उस पदार्थका नाम भी चित्तमें उत्पन्न हुआ, इस कारण रूप और शब्द इन दोनोंमें अभिन्नता है। एक बन जायेंगे। समाधान — ज्ञान शब्दात्मक है, यह कैसे भी ठीक नहीं है क्योंकि जब यह जाना कि यह रूप है तो इस ज्ञानके साथ जो पदार्थ प्रतिभासमें आया वह वचनमयतासे सहित प्रतिभासमें आया है या पदार्थके भिन्न वचनके विशेषणसे विविक्त ज्ञानमें आया है। दो विकल्प किए—यह हरा जाना तो हरेका जो ज्ञान हुआ सो क्या वचन शब्दरूपसे यह स्वयं युक्त है इस तरह का ज्ञान हुआ या रूपसे भिन्न वचन है और उस वचन विशेषणसे हमने समझा कि यह हरा हैं, नीला है वह वचनरूप इससे अभिन्न रूप ज्ञात हुआ या इससे भिन्न विशेषण है। जिन वचनोंसे हम अपनी समझमें लाये हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शब्दविशेषणगम्यतासे पदार्थके शब्दात्मकत्वकी असिद्धि—यदि कहो कि ज्ञान खुद वचनरूप हैं तो यह तो प्रत्यक्षसे असिद्ध है। इसको देखनेके साथ ही वचनरूपता भी किसीको ज्ञात नहीं होती। नेत्रसे वचन तो नहीं देखा। तो पदार्थ वचनरूप नहीं है। यदि एक इन्द्रिय दूसरेको जानने लगे तो फिर बहुत सी इन्द्रियां मानना व्यर्थ है। एक आंख ही खोल लें तो स्वाद भी ले लें, रूप भी देख लें, शब्द भी सुन लें। सब कुछ एक इन्द्रियसे काम हो लेगा। पर ऐसा तो नहीं है इस कारणसे पदार्थ शब्दमय नहीं हैं। ये रूपादिक शब्दात्मक नहीं हैं। यदि कहो कि जब हमने जाना कि यह रूप है, यह पीला है तो यह पीला ज्ञानमें आया और यह पीला है ऐसे शब्दोंसे ज्ञानमें आया तो वह विशेषण शब्द इन पदार्थोंसे भिन्न है ऐसा मालूम हो तो ठीक है भिन्न ही रहा। जब भिन्न हो गए तो फिर शब्दात्मक कैसे हो गया अर्थ ?

शब्द, अर्थ और ज्ञानके स्वतन्त्र स्वरूपकी सिद्धि—यहाँ इस बातका कथन किया जा रहा है कि पदार्थ पदार्थ ही है ज्ञान ज्ञान ही है शब्द शब्द ही है, न तो पदार्थ शब्दमय है और न ज्ञान शब्दमय है। नेत्र इन्द्रियने तो एक विशुद्ध रूपको जाना। जब यह नेत्र इन्द्रिय ही किसीमें शब्दका ग्रहण करले कि यह रूप है इस तरह से कुछ देखा, इन शब्दोंके द्वार देखा, भिन्न ही विषय है। तो जब नेत्र इन्द्रियसे शब्द विशेषण ग्रहणमें आया तो वह इसको शब्दात्मक कैसे मान लें ? यदि कहो कि शब्द दूसरे ज्ञानसे जाना, श्रोत्रसे जाना और उस विशेषणसे सहित पदार्थको हमने नेत्र-इन्द्रियसे जाना तो प्रकट ही भिन्न हो गए। तो न तो पदार्थ शब्दरूप है और न ज्ञान शब्दरूप है। इस ज्ञानसे शब्दको न्यारा ही समझिये। भले ही हम आप ज्ञान करते हैं तो अन्तरङ्गमें उसका नाम भी साथ-साथ उठ जाता है। जैसे कोई आया तो आते ही उसका नाम भीतरमें उखड़ गया, हम मुखसे बोलें अथवा न बोल, इस आधारपर यह दार्शनिक कह रहा कि सारे ज्ञान शब्दरूप होते हैं, ज्ञान स्वतंत्र कुछ नहीं है। शब्दसे रहित कोई ज्ञान हो ऐसी बात समझमें नहीं आती, यह शब्दब्रह्मवादीका मंतव्य है। स्याद्वाद तो शब्दज्ञान व अर्थज्ञानको प्रसंगमें यह कहता कि भले ही उसमें कुछ साथ होनेसे सम्बन्ध हो लेकिन स्वरूप देखा जाय तो शब्द तो है पौद्गलिक पर्याय और ज्ञान है आत्माकी परिणति तो जब हम पदार्थसे निरखते हैं तो पदार्थ नीला आदिक ही दिखनेमें आता है। शब्द नहीं आता, इस कारण शब्द जुदा है और ये दिखनेमें आने वाले पदार्थ जुदे हैं।

निःशब्द निर्णायक ज्ञानकी प्रमाणताका निष्कर्ष यहाँ प्रमाणको स्वरूपका कथन चल रहा है सो यह बात कही है। प्रमाण क्या है ? स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराने वाला ज्ञान प्रमाण है। तो इसपर दार्शनिक अपनी-अपनी बात रख रहे हैं। शब्दब्रह्मवादी यह बात रख रहे हैं कि ज्ञान स्वतंत्र कुछ नहीं है। जो शब्दात्मक प्रत्यय है, शब्दात्मक जानकारिता है वही प्रमाण है। ज्ञान कोई अलग

http://www.jainkosh.org

चीज नहीं है। क्यों ? जब हम पदार्थको देखते हैं तो पदार्थ ही जाननेमें आ रहा, शब्द उसके साथ सुननेमें, जाननेमें तो निकल रहे हैं, किन्तु विषय भिन्न-भिन्न है। यदि यह कहो कि जितने भी पदार्थ हैं वे सब शब्दसे सम्बन्धित हैं, शब्दके सम्बन्ध बिना कोई पदार्थ नहीं है इस कारणसे शब्द सम्बन्धित पदार्थका स्मरण करनेसे शब्दात्मक अर्थका दर्शन सिद्ध हो जाता है। यह भी ठीक नहीं क्योंकि इसमें तो अन्योन्याश्रय दोष है। जब हम शब्दात्मक अर्थ देखें तो शब्दात्मक अर्थका स्मरण समझमें आये। और अर्थका स्मरण हो तो शब्दात्मक अर्थका दर्शन हो। अतः शब्दका शब्दात्मक और अमुकका सम्बन्ध है इस कारण अर्थके देखनेमें शब्दात्मककी सिद्धि हो जाती है यह युक्त नहीं है। तो पदार्थ शब्दात्मक नहीं है और न ज्ञान शब्दात्मक है। ज्ञान ज्ञान है और जो ज्ञान अपना और पदार्थका निश्चय करता है वह प्रमाण है।

ज्ञानाद्वैतवादके उदाहरणसे शब्दाद्वैतकी सिद्धिका यत्न— एक दार्शनिक यह कह रहा है कि जो जानकारी हैं वे सब शब्दस्वरूप हैं, शब्दरहित नहीं हैं इस कारण सारा जगत शब्दब्रह्मरूप है। जैसे कुछ दार्शनिकोंने सारे जगतको ज्ञानस्वरूप माना। ज्ञानके अलावा ये चीजें और कुछ नहीं हैं, उसकी यह दलील है कि जब हमारे ज्ञानमें आया कुछ तब तो यह पदार्थ है ना चौकी, पुस्तक, चटाई ये तब कहलाये जब हमारे ज्ञानमें आये। ये चौकी चटाई वगैरह तो कुछ चीज ही नहीं हैं, बस ज्ञान ही चीज है। ज्ञानकी ही ये सब पर्यायें हैं। और, उसकी ध्वनि और भी सुन लीजिए। जैसे जब स्वप्न आता है तो स्वप्नमें जंगल, शेर, पहाड़, महल सब कुछ दीखता है पर वहाँ ये कुछ चीजें हैं क्या ? केवल ज्ञान-ज्ञान चल रहा। ज्ञान ही पहाड़ हुआ, ज्ञान ही महल हुआ, ज्ञान ही जंगल हुआ। तो जैसे स्वप्नमें सब कुछ जो दीखता है वह कुछ नहीं है किन्तु ज्ञान ही ज्ञान है। ऐसे ही यहाँ पर संसार अवस्थामें ये सब चीजें हैं कुछ नहीं, सब ज्ञान ही ज्ञान है, सब कल्पना ही कल्पना है। यों युक्ति देकर जैसे ज्ञानाद्वैतवादियोंने केवल ज्ञानमय ही जगतको बताया है ऐसे ही शब्दाद्वैतवादियोंने सारे जगतको एक शब्दब्रह्मरूप बताया।

शब्दाद्वैतवादके प्रकरणमें तीन विकल्प—यहाँ शब्दब्रह्मवादी यह कर रहे है कि जो कुछ दुनियामें सत् है वह सब शब्दात्मक है। शब्द ही सब कुछ है, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। वहाँ भी देखिये तो शब्द बिना कुछ चलता है क्या ? समझना, समझाना, रोजिगार होना, खाना खिलाना. आजीविका होना, परमार्थकी बात सुनना, ध्यानमें लगना, अध्ययनमें लगना, संसारसे छूटना इन सब कार्योंमें शब्द-शब्द का ही तो काम पड़ रहा है। ऐसी दृष्टि बनाकर शब्दाद्वैतवादी कह रहे हैं कि सब कुछ शब्दमय है।। पदार्थ ज्ञान सभी शब्दात्मक हैं। क्योंकि सब पदार्थोंका शब्दसे सम्बन्ध है तो यहाँ पूछ रहे व कि पदार्थका शब्दसे सम्बन्ध है इसका अर्थ है क्या ? क्या यह अर्थ है कि पदार्थके ज्ञानके समयमें शब्दका भी प्रतिभास होता है ? यह मतलब है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है पदार्थ और शब्दके सम्बन्धका या यह मतलब है कि जिस जगहपर पदार्थ है उस ही जगहमें शब्दका भी ज्ञान चल रहा है, क्या यह अर्थ है ? अथवा यह अर्थ है क्या कि जिस समय पदार्थका ज्ञान कर रहे हैं उस ही कालमें शब्दका भी प्रतिभास हो रहा है। शब्दका अर्थके साथ सम्बन्ध है इसका ख्याल करनेके लिए तीन विकल्प रखे।

शब्दाद्वैतकी साधनामें युक्तियोंकी असमर्थता—पहिली बात तो यह है कि पदार्थके ज्ञानमें शब्दका भी प्रतिभास होता हो यह बात तो सही है नही क्योंकि जब नेत्र इन्द्रियसे रूपका प्रत्यक्ष कर रहे हैं उस समयमें शब्दका प्रतिभास नहीं हो रहा। दूसरी भी बात सही नहीं है। दूसरी बात क्योंकि जिस जगह पदार्थ है उसी जगह शब्दका भी बोध हो रहा है क्योंकि शब्दका तो होता है कर्णके प्रदेशमें बोध और रूपादिकका हो रहा है नेत्रइन्द्रियसे बोध और ये रूपादिक शब्दसे न्यारे हैं। शब्द यहाँ जाना गया, रूप वहाँ दीखा। रूपकी ही जगहमें शब्द कहां मालूम पड़ा। तीसरी बात भी सही नहीं है, वह क्या कि जब अर्थका ज्ञान हो रहा है इसी समयमें शब्दका भी प्रतिभास होता है इस कारणसे पदार्थका और शब्दका वहाँ सम्बन्ध है। यह भी ठीक नहीं है क्योंकि चाहे एक ही समयमें दोनोंका बोध हो, यहाँ रंग भी ज्ञानमें आया और भीतर शब्द भी सुननेमें आया या शब्द भी समझमें आया, इतने पर भी नेत्रके ज्ञानमें तो शब्दका प्रतिभास नहीं हो गया। वहाँ दो ज्ञान हो गए। शब्दका ज्ञान शब्द ज्ञानसे किया, रूपका ज्ञान, रूपज्ञानसे किया। यदि कहो कि रहे जाये भिन्न ज्ञानके द्वारा वे ज्ञेय तो भिन्न ज्ञानके द्वारा ज्ञेय हो गए तो भेद अपने आप सिद्ध हो गया।

शब्दाद्वैत मंतव्यकी अविचारितरमणीयता—शब्दब्रह्माद्वैतका सिद्धान्त जो शब्दाद्वैतवादी रख रहे हैं यह बहुत विचारनेपर तो खण्डित हो जाता मगर साधारण लोक विचारसे इसका खण्डन नही होता, क्योंकि ज्ञानसे ऐसा लग रहा है कि शब्दसे बीधा हुआ ज्ञान है। जब यह अलमारी है तो अलमारीको निरखते ही अलमारी ऐसे शब्द भीतरमें आ ही जाते हैं। जिसे निरखा उसको निरखते ही भीतरमें शब्द आ ही जाता है। जिसका परिचय भी न हो ऐसा कोई आता जाता मनुष्य दीखा तो चाहे उसका नाम न मालूम होनेसे नामरूप शब्द न कहें किन्तु यह मनुष्य है इतने शब्द फिर भी उठ जाते हैं। तो इस ही कारण शब्दाद्वैतवादी यह कह रहे हैं कि ज्ञान कोई स्वतंत्र चीज नहीं है किन्तु शब्द रचना ही एक ज्ञान है, पर यह बात सही नहीं बैठी क्योंकि शुद्ध दृष्टिसे निरखनेपर रूपका ज्ञान नेत्रसे ज्ञात हुआ, शब्दका ज्ञान श्रोत्रसे ज्ञात हुआ, तो फिर एकता कैसी रही ?

ज्ञानकी शब्दानुविद्धताके निराकरणमें युक्तिरूप उदाहरण—यदि तुम ऐसा मानते हो कि सारे ज्ञान शब्दसे बीधे हुए होते। तो जो तत्कालका उत्पन्न हुआ बालक है वह जो कुछ देख रहा है उसे मुखसे बोल नहीं सकता पर भीतरमें उसके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शब्द उठ रहे हैं। तो उस बालकके शब्दके बिना ही अर्थदर्शन कैसे सम्भव हो गया ? वहाँ तो शब्द नहीं मालूम पड़ रहा बालकको। जैसे यह भींट है, नीली है, पीली है, ये शब्द भी उठते हैं क्या बालकके चित्तमें ? तो शब्द बिना ज्ञान हुआ कि नहीं ? ज्ञान शब्दरूप ही हो यह बात ठीक नहीं। और, भी निरखिये ! प्रभु, ईश्वर सर्वज्ञदेव को सब लोग श्रुतसे जानते हैं। क्या उनके ज्ञानके साथ शब्द भी उठ रहे हैं ? वहाँ भी शब्द नहीं उठ रहे। हम आपमें वासना पड़ी है ? संस्कार पड़ा है इस कारणसे देखते ही शब्द उठ जाते हैं तो यह हम आप लोगोंकी परिस्थिति है। पर इससे ज्ञान शब्दरूप ही हो गया हो यह बात तो नहीं समायी है, अथवा कोई मनुष्य घोड़ेका चिन्तन कर रहा है, घोड़ा खरीदनेके विचारसे बैठा है या किसीका घोड़ा गुम हो गया उसके चिन्तनमें बैठा है तो केवल घोड़े घोड़ेका शब्द आकार प्रकार नाम भीतर उठ रहा है, ऐसे पुरुषके सामनेसे गाय निकल जाय तो क्या गाय दिखेगी नहीं ? दिखती है पर इनके सिद्धान्तसे नहीं दिखनी चाहिए क्योंकि वहाँ शब्द तो भीतर घोड़ेका हो रहा है। तो शब्द जब गायका भीतर उठा तब गाय दिखना चाहिए पर घोड़ेका विकल्प करने वाले पुरुषको गायका दर्शन हो जाता है वहां शब्दरहित ज्ञान है इस कारणसे भी सिद्ध है कि ज्ञान शब्दात्मक नहीं होता। तो ज्ञान शब्दरहित है और जिस ज्ञानमें पदार्थका निर्णय बसा हो यह ज्ञान प्रमाणभूत है।

शब्दरहित सविकल्प ज्ञानके प्रामाण्यकी प्रतीति— शब्दब्रह्मवादियोंने शब्दके सम्बन्धमें एक सिद्धान्त रख दिया कि वचन दो प्रकारके होते हैं— एक शाश्वत और एक प्रकाशहेतुभूत। शाश्वत तो सदैव रहता है और वह शक्तिरूप है, व्यक्तिरूप नहीं है। जैसे यह चौकी है इसमें शब्द बसा है कि नहीं ? उनके सिद्धान्तसे बसा है, और जब हाथको ठोकर लगाया तो शब्द प्रकट हो गया। तो शब्द सदैव रहता है उनके सिद्धान्तसे बसा है और जब हाथकी ठोकर लगाया तो शब्द प्रकट हो गया। तो शब्द सदैव रहता है उनके सिद्धान्त से और जो शब्द प्रकट हुआ वह ज्ञानका कारण बनता है। तो ये सारी बातें तुम्हारी सिद्ध नहीं होतीं, क्योंकि पदार्थ भी शब्दात्मक नहीं और ज्ञान भी शब्दात्मक नहीं। श्रोत्रसे ग्रहणमें आने वाली बैखिरी भाषाको नेत्र कहाँ जानता है ? और जो अन्तरङ्गमें शब्द उठता है उसके बिना भी शुद्ध ज्ञान हो जाता है। तो ज्ञानात्मक न तो अर्थ है और न शब्द है इसलिये शब्दात्मक ही सब है यह बुद्धि छोड़ो। शब्द शब्दकी जगह है, ज्ञान ज्ञानकी जगह है, अर्थ अर्थकी जगह है, सब कुछ स्वतन्त्र अपना अपना अस्तित्व रखता है। उसमें प्रमाण ज्ञान है, अचेतन प्रमाण नहीं हो सकता है। उस ज्ञानको प्रमाण सिद्ध करने के प्रसङ्गमें यहाँ शब्दात्मकताका निराकरण किया गया है।

शब्दाद्वैतका सिद्धान्त—शब्दब्रह्मवादी यह कह रहे हैं कि पदार्थ शब्दसे सम्बद्ध रहते हैं, तो पदार्थकी शब्दसम्बद्धताका अर्थ क्या है ? न तो पदार्थके ज्ञानमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शब्दका प्रतिभास होता है और न पदार्थकी जगहमें शब्दका वेदन होता है । और, यद्यपि पदार्थके ज्ञानके समयमें शब्दका भी प्रतिभास हो रहा है। जैसे कि यह रूप है, ऐसा शब्द भी उठ रहा है और रूपका ज्ञान भी चल रहा है, इतनेपर भी शब्द तो जाना जाता है कर्णसे और पदार्थ निरखा जाता है नेत्रसे तो यह एक कैसे हो सकता है ? यदि यह कहो कि सारा जगत वचनरूप है और वह शक्तिरूप वचन है और व्यक्ति रूप वचन है ऐसे दो भेद कहो तो वह युक्त नहीं बैठता । शब्द ब्रह्मवादी तीन प्रकारसे वचनरूपता मानते हैं । एक तो अन्त: ज्योतिरूप वाणी दूसरे मध्यमावाणी और तीसरे बैखिरी वाणी । तीन तरहकी वाणी मानी है । बैखिरीवाणी तो वह है जो कानसे स्पष्ट शब्द सुननेमें आयें । जो वचन बोलनेके स्थान हैं कंठ तालू वगैरह, उन के खुलनेपर, प्रयोग होनेपर हृदयकी वायुके बलके कारण जो वचन निकलते हैं वह है बैखिरी वाणी । अब उससे और अन्तरङ्गमें जिसमें हृदयमें रहने वाली वायुके बलकी जरूरत नहीं है और जहाँ वर्ण पद आदिक भी नहीं हैं, वहाँ जो कुछ प्रत्यक्षमें दीखता है उस दिखनेके समयमें जो अन्तरङ्गमें वचन उठ रहे हैं वह मध्यमा वाणी है । इस का सम्बन्ध जानकारी करनेसे है । जब हम किसी आकार सकलमें जानकारी बनाते हैं तब यह मध्यमा वाणी हुई । अब उससे भी और अन्तरङ्गकी वाणी है सूक्ष्मा । सूक्ष्मा केवल स्वरूपके ज्योति स्वरूप है । मध्यमाका सम्बन्ध तो बाह्य पदार्थोंकी जानकारीके सम्बन्धमें है और सूक्ष्माका स्वरूप ज्योतिके अनुभवकी बात है, इस प्रकार सूक्ष्मा मध्यमा और बैखिरी इन तीन वाणियोंसे सारा जगत व्याप्त है । यों सब जगत शब्दात्मक है । यह बात तब घटित हो जब शब्दका, पदार्थका या शब्दका ज्ञानका तादात्म्य हो । सो तादात्म्य तो है नहीं, अतएव यह कहना तुम्हारा गलत है ।

शब्दाद्वैतकी अनुमानसे असिद्धि— यदि यह कहो कि हम अनुमानसे सिद्ध कर लेंगे कि पदार्थ अनुमानसे शब्दात्मक सिद्ध है तो यह भी बात तुम्हारी मनोरथ मात्र है सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि पदार्थ शब्दोंसे बींधा हुआ है । ऐसा सिद्ध करने वाला अविनाभावी साधन कोई नहीं है । कौनसा शब्द बतावोगे जिससे यह सिद्ध हो सके कि पदार्थ शब्दात्मक है, और अनुमान आदिक भी जो प्रत्यक्ष बाधित बात है उसमें अनुमान करोगे क्या ? कोई यों अनुमान कर ले कि अग्नि ठंढी होती है । क्यों ? द्रव्य होने से । जो द्रव्य होते हैं वे ठंडे होते हैं जैसे पानी । पानी द्रव्य है अतएव ठंडा है । अग्नि भी द्रव्य है । अत: अग्नि भी ठंडी होनी चाहिए । क्या ऐसा भी कोई अनुमान करेगा ? यदि कोई ऐसा कहे तो उसके हाथमें आग धर दो तो उसे पता पड़ जायगा कि अग्नि ठंड़ी होती है या गर्म । जो प्रत्यक्ष बाधित बात है उसका सिद्ध अनु मान नहीं चला करता है । यह बात बिल्कुल प्रत्यक्ष सिद्ध है कि हम किसी पदार्थका ज्ञान करते हैं तो पदार्थका ज्ञान हो रहा है वहां शब्द साथमें नहीं जाने जा रहे, और जाने भी जा रहे हों शब्द तो शब्दकी जगह शब्द जाने जा रहे, पदार्थकी जगह पदार्थ जाने जा रहे ।

प्रत्यक्षबाधित अर्थमें साधनकी अगोचरता— यदि यह कहो कि सारा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जगत शब्दमय है, सो उस जगतके उदरमें रहने वाले जितने भी ज्ञान हैं वे ज्ञान भी अर्थमय होनेसे शब्दसे अनुविद्ध हो जायेंगे। सारा संसार शब्दात्मक है। शब्दात्मक इन सब पदार्थोंका जो ज्ञान है वह ज्ञान भी शब्दात्मक है। तो शब्दात्मकज्ञानकी सिद्धि होगी और वही शब्दात्मकज्ञान सब कुछ होता है, तो यही भी कहना तुम्हारा ठीक नहीं है क्योंकि यह तो प्रत्यक्षसिद्ध बात है कि शब्दमय पदार्थ प्रत्यक्षमें नहीं जाना जाता। जो बात प्रत्यक्षके विरुद्ध है उसमें कितने ही अनुमान दो, कितनी ही युक्तियां दो तो वे ठीक बैठ ही नहीं सकती। मोर, कहीं भी चले जावो, वनमें हो, मंदिरमें हो, किसी भी जगह हो जो–जो कुछ जाननेमें आ रहा पर्वत है, वृक्ष है, लता है ये सब शब्दरूप तो जाननेमें नहीं आ रहे। यह तो आंखोंसे दिख रहा, नीले पीले ऐसे रूप ही तो दिख रहे हैं। तो प्रत्यक्ष विदित बिल्कुल स्पष्ट सविकल्पज्ञानसे ये सारे पदार्थ शब्दरहित मालूम होते हैं।

विश्वकी शब्दरूपताकी असंभवता और भी देखिये—जो जिस आकारसे रहित प्रत्यक्षसे जाना जाय तो परमार्थसे वह उससे तन्मय नहीं है। जब प्रत्यक्षसे हमें सभी पदार्थ शब्दसे रहित जाननेमें आ रहे हैं तो शब्दात्मक कुछ भी चीज नहीं हो सकती। जैसे चौकी वगैरह ये जलके आकारमें तो नजरमें नहीं आते। तो ये चौकी वगैरह जलसे तन्मय हो जायेंगी क्या ? नहीं तन्मय हो सकती। जो जिस आकारसे विकल है वह उसमें तन्मय नहीं हो सकता। तो परमार्थसे यह सब कुछ भी दिख रहा है इसके ज्ञानके साथ न तो पद भिड़ा है न वाक्य भिड़ा है और न वचन भिड़े हैं। सब शब्दोंसे ये पदार्थ न्यारे ही हैं। यह जगत शब्दात्मक नहीं है। शब्द भी एक चीज है। जैसे पदार्थ वस्तु है, रूपादिक गुण है ऐसे ही शब्द एक चीज है और जगतका शब्द भी अंश है। जैसे जगतमें अनन्त पदार्थ हैं उन्हीं पदार्थोंमेंसे शब्द भी एक पदार्थ है, इस तरहसे तो जगतमें एक शब्द है, पर सारा जगत शब्दरूप हो यह बात सत्य नहीं है।

शब्दमयता या शब्दोद्भवता दोनों हेतुओंसे जगतके शब्दात्मकत्वकी असिद्धि—अब दूसरी बात पूछ रहे हैं कि तुम जो इस जगतको शब्दमय मान रहे हो कि सारा जगत शब्दमय है तो क्या इसलिए शब्दमय है कि यह शब्द परिणामरूप है इसलिए शब्दमयकी सिद्धि करते हो या इस जगतकी शब्दोंसे उत्पत्ति होती है ? ये दो विकल्प रख रहे हैं। शब्दपरिणमनरूप होनेसे तो जगतको शब्दरूप कह नहीं सकते क्योंकि शब्दपरिणमनरूप है ही नहीं जगत। प्रत्यक्षसे भी यह नजर आता कि सारा संसार शब्दशून्य है, शब्द भी एक चीज है, पदार्थ भी एक चीज है, और वे सब न्यारे न्यारे हैं। शब्दात्मक यदि यह ब्रह्म हुआ, जगत हुआ तो फिर यह बतलावो कि यह सारा जगत जो नीला, पीला आदिक रूप परिणमन कर रहा है यह स्वाभाविक शब्द को छोड़ करके जगत बन गया या शब्दरूपता भी है और जगत भी बन गया। जैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कागज है और वह राखरूप परिणम गया तो यह बतलावो कि राखरूप परिणमनको प्राप्त हुआ जो वह मैटर है सो वह कागजके स्वभावको छोड़कर परिणमा या कागजके स्वभावको रखता हुआ परिणमा, ऐसा प्रश्न कर सकते ना ? वहाँ तो यह उत्तर है कि कागजके स्वभावको छोड़कर राखरूप परिणमा। तो इस प्रकार शब्द यदि शब्दपनेको छोड़कर जगतरूप परिणमा तो इसका मतलब यह है कि शब्दका विनाश हो गया तो शब्द अनित्य हो गया, और कहो कि शब्दके स्वभावको न छोड़कर यह जगत परिणमा है तो जैसे मिट्टी मिट्टीके स्वभावको न छोड़कर घटरूप परिणमता है तो वहां घट पर्यायमें भी मिट्टी स्वभावका ग्रहण होता है इसीप्रकारसे उस शब्दका भी ग्रहण होना चाहिए सो होता नहीं। इससे यह सिद्ध है कि शब्द न्यारी चीज है, पदार्थ न्यारे हैं। शब्दात्मक यह संसार नहीं, ज्ञान शब्दात्मक नहीं, अतएव यह मानना कि जितने भी ज्ञान होते हैं वे शब्दरूपसे ही सविकल्प बनते हैं, यह बात तुम्हारी युक्त नहीं बैठती।

निर्णायक ज्ञानकी प्रमाणताका प्रकरण—इस ग्रंथमें तात्विक चर्चा चल रही है। यद्यपि यह चर्चा कुछ थोड़ी सी कठिन है, किन्तु ध्यानपूर्वक सुननेसे यह कुछ कुछ विदित होने लगेगा कि आत्माके सम्बन्धमें अथवा प्रमाणके सम्बन्धमें दार्शनिकोंने क्या-क्या मर्म निरखा है और किस दृष्टिसे उन्हें वह मर्म विदित हुआ। प्रकरण यहाँ प्रमाणके स्वरूपका है। प्रमाण ज्ञान होता है, अज्ञान प्रमाण नहीं होता। जैसे व्यवहारी जन कहने लगते हैं कोई दस्तावेज आगे रखकर कि यह प्रमाण है। कोई किसी पुरुषको सामने लेकर कहते कि यह गवाह प्रमाण है अथवा अपना कब्जा दिखाकर कि देखो ना मैं रह रहा हूं यहाँ, मेरा इसपर अधिकार है यह प्रमाण है। इन सब बातोंके अन्दर भी ज्ञान प्रमाण है। वह दस्तावेज प्रमाण नहीं। वह तो कागज है। स्याही है। उसको निरखकर जो अन्तर्ज्ञान बना है हाँ वास्तवमें ऐसी ही बात है तो ऐसा जानने वाला ज्ञान प्रमाण है। और, वह ज्ञान भी जो निर्णायक ज्ञान है वह प्रमाण है।

शब्दब्रह्मवादमें शब्दात्मक प्रत्ययकी प्रमाणता इस निर्णायक ज्ञानके सम्बन्धमें एक दार्शनिक यह कह रहा है कि ज्ञान अलगसे कुछ नहीं है। जो एक शब्द रचना उत्पन्न होती है वही प्रमाण है क्योंकि हम आप सब लोगोंका जब जो कुछ भी ज्ञान होता है तो शब्दोंकी रचनामें हम लोगोंको ज्ञान होता है। जैसे मकान जाना तो भीतरमें मकान ऐसा शब्द उठता हुआ ज्ञान होता है। चाहे मुखसे न बोले लेकिन भीतरमें वे शब्द उठे और जहाँ जिस किसी पदार्थको हम जानते हैं तो शब्दपूर्वक जानते हैं, और शब्द रचना अन्तर्जल्प नहीं बने तो उस ज्ञानकी कोई सकल ही न बने। कुछ भी जानें तो उसमें उसका नाम रङ्ग प्रकार किसी ब बत कुछ भी तो शब्द उठ आते हैं ऐसा एक दार्शनिकने कहा है। अतः ज्ञान तो प्रमाण है, पर वह ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शब्दात्मक ही है। शब्दात्मकताको छोड़कर ज्ञान और कुछ चीज नहीं है। इसकी सिद्धिमें वे युक्ति यह दे रहे हैं कि ज्ञान ही क्या सारा जगत शब्दमय है। जैसे एक दार्शनिकने यह माना था कि सारा जगत ज्ञानस्वरूप है, अन्य कुछ मालूम पड़े तो भ्रम है। न भींत हैं न मकान है, जो कुछ है सो ज्ञान-ज्ञान है और भींटादिक मालूम पड़े तो भ्रम है। एक दार्शनिकने यों कहा। तो यहाँ कह रहे कि सब कुछ शब्दब्रह्म है। इसके अतिरिक्त और कुछ मालूम पड़े तो वह सारा भ्रम है। यह समस्त विश्व शब्द मय है।

शब्दमयताका दो विकल्पोंसे प्रतिविधान—इस शब्द ब्रह्मवादके प्रतिविधानमें उनसे पूछ रहे हैं कि जगत शब्दमय है तो क्या इस कारण है कि यह सारा विश्व शब्दपरिणामरूप है, या इस कारण है कि इस समस्त जगतकी शब्दोंसे उत्पत्ति हुई है ? दो बातें सामने रखी। इस सारी दुनियाको शब्दरूप कैसे बता रहे हो ? आंखोंसे जो कुछ दिखता है वह शब्दरहित दीखता है, और इन समस्त पदार्थोंको शब्दात्मक कह रहे हो तो क्या शब्दरूप परिणमनसे जगत शब्दात्मक है या शब्दसे उत्पन्न होनेसे शब्दात्मक है। अब शब्दरूप परिणमनकी बात तो यों युक्त नहीं है कि वहाँ भी यह सोचना पड़ेगा कि यह जगतरूप जो बन गया है सो शब्दब्रह्म बना है यह तुम्हारा कहना है। तो यह शब्दब्रह्म अपनी शब्दस्वरूपताको न छोड़कर नीलादिक पदार्थरूप बना है या शब्दस्वरूपताको छोड़कर बना है। शब्दरूपताको छोड़कर बन गया तो शब्द नित्य नहीं रहा। शब्द नष्ट हो गया और शब्दरूपताको न छोड़कर बना है तो इसका अर्थ यह हुआ कि हमें जो कुछ दिखता है वह सब शब्दमय है। सो शब्द और रूपादिक पदार्थ सब एकरूप हो गये। तो बहिरे आदमी जब किसी पदार्थको देखते हैं तो उन्हें शब्द क्यों नहीं सुननेमें आते। जब ये पदार्थ शब्दमय हैं तो देखते ही के एक साथ सबका ज्ञान हो जाना चाहिए। जब नीला पीला आदिक पदार्थ बहिरोंको दिखते हैं तो उन्हीं बहिरोंको शब्दका भी ज्ञान होना चाहिए क्योंकि तुमने सारे लोक को शब्दमय मान लिया है। तो जैसे इन पदार्थोंमें नील पीत रूप भिन्न नहीं हैं इसी तरह इन पदार्थोंमें शब्द भी अभिन्न हैं और जो जिस पदार्थसे अभिन्न है उस पदार्थका ज्ञान होनेपर उसका भी ज्ञान हो जाता है। और, यदि यह कहें कि भाई नील पीत आदिक रंगका तो ज्ञान हो गया पर इनके शब्दका नहीं, तो नीलादिक पदार्थ व शब्द एक चीज तो नहीं रही।। नील आदिक पदार्थ और ये शब्द एक हों तो आंखोंसे जैसे पदार्थ दीखे ऐसे ही शब्द भी ज्ञानमें आ जाना चाहिए था। किन्तु आते हैं नहीं। तो शब्द जुदी चीज है और पदार्थ जुदी चीज है।

भ्रममें तत्त्वभ्रम—यहाँ उस एक दार्शनिककी बात कह रहे हैं कि जो दार्शनिक सारे जगतको शब्दमय मानता है। उसका कहना है कि शब्दके सिवाय और कुछ नहीं है। यदि और कुछ मालूम पड़े तो वह भ्रमकी बात है। सुननेमें तो उल्टा सा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लगता, पर थोड़ा सा विचार करनेपर ऐसा लगने लगता कि सही तो बात है क्योंकि जिस पदार्थका ज्ञान होता है उस पदार्थमें उन शब्दोंकी रचना बन जाती है, भींट दिखते ही भींट पदार्थके सम्बन्धमें भींट ये शब्द उठ ही जाते हैं। तो शब्द उठे बिना पदार्थ भी ज्ञानमें नहीं आते। तो मालूम होता है कि पदार्थ शब्दात्मक हैं किन्तु और जरा गहरा विचार करें तो ये विचार खण्डित हो जाते हैं। पदार्थ पदार्थकी जगह हैं, शब्द शब्दकी जगह हैं, ज्ञान ज्ञानकी जगह हैं।

अर्थ, अभिधान और प्रत्ययकी सत्ता व स्वतन्त्रता इस प्रकरणमें तीन चीजें स्पष्ट अवगमके लिये समझ लीजिये शब्द, ज्ञान और अर्थ। जैसे कोई कहता है कि हमारा पुत्रमें अधिक प्रेम है तो पुत्र तीन तरह के हैं शब्दपुत्र, अर्थपुत्र और ज्ञानपुत्र। किसी कागजमें पु और त्र ऐसे शब्द लिख दिए जायें तो उन शब्दोंको निरखकर वह कहेगा कि यह पुत्र है। लो यह शब्द पुत्र हो गया। उससे कोई प्रेम कर नहीं सकता। वे तो कागजमें पु और त्र ऐसे अक्षर लिखे हुए हैं। और, अर्थपुत्र वह है जो आपके घरमें २ हाथ २ पैर वाला है। तो आपके घरमें जो अर्थपुत्र है उससे आप प्रेम करते हैं क्या ? उससे भी आप प्रेम नहीं कर सकते। क्योंकि आपका सब कुछ गुण परिणमन आदिक आपके आत्मामें आपके स्वरूपमें है। आपके बाहर आप का कुछ नहीं है। इस समय शरीरके अन्दर जो कुछ जीवात्मक है उसमें ही आपकी सब कुछ चीज है, उससे बाहर नहीं है। कभी जीव शरीररहित भी हो जायगा तब भी उसका सर्वस्व आत्मप्रदेशमें ही रहेगा, तो आप जो कुछ कर पायेंगे वह अपने आप में ही कर पायेंगे, अपनेसे बाहर कुछ नहीं कर सकते। अंगुलीमें जो कुछ बात बनेगी गोल बने, सीधी बने वह अंगुलीमें ही बनेगी, अंगुलीके ही क्षेत्रमें बनेगी ? प्रत्येक पदार्थका काम उस ही पदार्थमें रहता है, उससे बाहर कुछ नही रहता है। तो मैं जीव जो कुछ भी कर पाऊँगा वह अपनेमें कर पाऊँगा अपनेसे बाहर नहीं। हमसे बाहर हैं वे पुत्रादिक. तो उनमें हम प्रेम कर नहीं सकते किन्तु हम अपने ही ज्ञानमें अपनी ही कल्पनामें जैसा कुछ यों विचारते हैं बस उसीका नाम प्रेम है। तो पुत्रका सम्बन्ध करके विषय करके जो हमने ज्ञान बनाया, कल्पना बनायी उस कल्पनामें हमारा प्रेम हुआ। तो हमारा ज्ञानपुत्रमें प्रेम है अर्थपुत्रमें प्रेम नहीं है।

जीवका स्वपरिणमनसे ही प्रेम सम्भव लोग कहते हैं कि इसका धनसे बड़ा स्नेह लगा है तो धन भी तीन तरहका है—शब्दधन, अर्थधन और ज्ञानधन। ध और न ऐसे शब्द किसी कागजमें लिख दिये जायें तो क्या उन लिखे हुए शब्दोंसे कोई प्रेम करता है ? यदि उनको ही धन मानने लगे तो कोई प्रेससे लाखों करोड़ों जगह धन, धन ऐसे शब्द छपाकर रख ले और अपनेको लखपति, करोड़पति अनुभव कर ले। तो ऐसा तो होता नहीं। शब्दधनसे तो कोई भी प्रेम नहीं कर सकता और अर्थधनसे भी क्या कोई प्रेम करता है ? ये बाहरमें जो सोना चाँदी आदिक वैभव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दीखते हैं इनसे भी कोई प्रेम कर सकता है क्या ? इनसे भी प्रेम नहीं कर सकता। क्योंकि वे सब पदार्थ भी इस जीवसे भिन्न हैं, सभी अपने प्रदेशमात्र हैं। मेरी जो भी परिणति होगी, करतूत होगी वह मेरेमें ही होगी, मेरेसे बाहर निकलकर अन्य जीवमें न होगी। ये सोना चाँदी आदिक वैभव बाह्य क्षेत्रमें पड़े हुए हैं उनसे भी कोई प्रेम, मोह कुछ भी नहीं कर सकता है। होता क्या है कि उन पदार्थोंके प्रति ख्याल करके, कल्पनाएँ बनाकर, उनको आश्रय विषय बनाकर जो चित्तमें कल्पना जगी उस कल्पनासे कुछ तृप्ति माननेमें यों कल्पनामें जो धनका विचार पड़ा हुआ है, वह है ज्ञानधन। उस ज्ञान धनमें मोह रहा।

शब्द, ज्ञान और अर्थकी विभिन्नताके कारण विश्वकी शब्दात्मकताकी असिद्धि - तो ये तीन बातें अलग-अलग हैं शब्द, अर्थ और ज्ञान। किन्तु, यहाँ यह शब्दाद्वैतवादी दार्शनिक यह कह रहा है कि सब कुछ शब्द ही शब्द है, न शब्दसे अलग ज्ञान है, न पदार्थ है। इसी सम्बन्धमें प्रश्न उठाया गया कि शब्द यदि सारा जगत बन गया तो शब्द स्वरूपको न छोड़कर बना है तो बहिरोंको भी शब्द सुनाई देना चाहिए क्योंकि शब्दमय जगत है। और यह जगतमें बहिरोंको भी दिखाई दे रहा है। तो जो जिसमें अभिन्न है उसके बारेमें ज्ञान हो जाता है उस वस्तुके दिखनेपर। एक ही पुरुष के एक ही समयमें एक ही चीजमें कुछका तो ग्रहण हो और कुछका ग्रहण न हो, यह बात तो नहीं बनती। और, यदि यह कहो कि यद्यपि शब्दका स्वरूप अलग है, पदार्थ का स्वरूप अलग है और फिर भी वह एक है तो अलग-अलग चीजको अगर एक मान लें तो हिमालय पर्वत, विन्ध्याचल पर्वत इन्हें भी एक कर डालो, क्योंकि भिन्न-भिन्न चीजोंको एक माननेकी तुमने कल्पना कर डाली है। इस कारण शब्दरूप जगत नहीं।

ज्ञानियोंके शब्दरहित ज्ञानका अनुभव - यह विश्व सब पदार्थोंका समूह है, उनमें एक शब्द भी शामिल है। ये शब्द जो बोले जाते हैं ये इन दिखने वाले पदार्थोंसे कुछ अलग चीज हैं जो दिखनेमें नहीं आते, किन्तु हैं इन भौतिक पदार्थोंसे बने हुए। तो ज्ञान ज्ञानरूप है शब्दरूप नहीं है ऐसा निर्णय रखिये और जब कभी अपने आपमें परकी अपेक्षा करके शब्दरहित केवल ज्ञानस्वरूप अनुभव कीजिए ! जब तक शब्दरूप ज्ञानका अनुभव करोगे तब तक समाधि अर्थात् समता नहीं बनती। ऐसे ज्ञान तक योगी आ जाते हैं कि जहाँ ज्ञान ज्ञान हो रहा है शब्द रंच नहीं उठ रहे हैं, हम आप लोग कुछ भी जानते हैं तो जाननेके साथ शब्द उठते रहते हैं। चौकी, पुस्तक जिसे जाना भीतरमें शब्द भी उठ जाते हैं। तो भीतरमें शब्द उठ जाना यह विकल्पकी बात है, यह आत्मानुभूतिसे अलग बात है। जब आत्मानुभूति होती है तो वहाँ मात्र ज्ञानका अनुभव है, शब्द नहीं उठते। कदाचित् वहाँ भी शब्द उठ बैठें तो आत्मानुभवसे गिर गए। तो वह ज्ञान जो शब्दरहित है उसका तो अनुभव प्राय: लोगों को है नहीं, और यह जाननेमें आ रहा कि जो भी ज्ञान बनता है वह शब्दरूप बनता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सो यों कल्पनायें बढ़कर जो पदार्थ दिखनेमें आते हैं, ज्ञानमें आते हैं वे भी शब्दरूप ही आते हैं, इस तरहसे सारे जगतको शब्दरूप जो माना जा रहा है वह युक्तिसे सिद्ध नहीं होता।

शब्दब्रह्मके विश्वरूप परिणमनमें प्रत्येकपदार्थमें विभिन्नशब्दरूप परिणमनका या एक शब्दरूप परिणमन विकल्प—इस सम्बन्धमें एक बात पूछी जा रही है यदि शब्द ब्रह्म इस जगतरूप परिणम जाता है, अर्थात् उत्पत्ति और विनाशको प्राप्त होता है तो यह शब्द ब्रह्म प्रत्येक पदार्थमें जुदे जुदे शब्दरूप परिणमता है या एक ही रूपमें परिणमता है। जैसे चौकीमें चौकी शब्दरूप परिणम गया, भींटमें भींट शब्दरूप परिणम गया तो ये भिन्न भिन्न परिणमे या प्रत्येक पदार्थको एक ही शब्द परिणमा? यदि भिन्न भिन्न परिणमें तो शब्द अनेक बन जायेंगे। यह दार्शनिक शब्दोंको एक रूप मानता है और नित्य मानता है तथा सुननेमें शब्द आये और मिट गए, सो शब्द नित्य भी नहीं रहा। यदि कहा जाय कि ये शब्द उत्पन्न नहीं हुए, नष्ट नहीं हुए किन्तु जैसे कोई पदार्थ ढका हो कपड़ेसे और उघाड़ दे तो पदार्थ दिख गया और ढक गया तो पदार्थ न दीखा ऐसे ही यह दार्शनिक मानते कि शब्द तो हमेशा सर्वत्र मौजूद है पर यह ढका है। जब कान व्यापार वगैरहके कोई साधन बने तो वे शब्द उभड़ आते हैं और साधन न बने तो शब्द ढक जाते हैं। और, इसी कारण शब्दको आकाशका गुण माना है। शब्द कहांसे पैदा होते? तो बहुत बहुत विचारनेके बाद कुछ ऐसा लगता कि वे शब्द आकाशसे मिलते हैं इत्यादिक मान्यता करके विश्वको शब्दमय मानना, सब अविचारितरमणीय है।

विश्वके शब्दात्मक परिणमनकी असिद्धि—आकाश तो अमूर्तिक है और शब्दमूर्तिक हैं, शब्द तो भिड़ते हैं उनका अमूर्तिक आकाशमें प्रवेश कैसे हो सकता? शब्द नामका तो मैटर ही जुदा है इसका नाम है शब्द वर्गणायें। ये शब्द वर्गणायें सब जगह मौजूद हैं। ये शब्द वर्गणायें जब शब्दरूप प्रकट होती हैं तो संयोग वियोग दोनों स्थितियोंमें शब्द प्रकट हो जाते हैं। तो शब्द चीज जुदा है और पदार्थ जुदा है। यदि शब्द ही जगत रूप बन जाता है तो जगतमें तो पदार्थ अनन्त है। जितने पदार्थ हैं क्या उतने रूपसे शब्द परिणमते हैं? यदि उतने रूपमे परिणम गये तो जितने पदार्थ हैं उतने शब्द बन गए। तो शब्द एक रूप कहाँ रहा? अगर किसी एक ही रूप बनता है तो फिर पदार्थमें भेद न रहना चाहिए। एक रूप शब्द और उतने पदार्थोंरूप परिणम गया तो फिर एक शब्द है तो सारी चीजें एक मालूम होना चाहिये। एक कुछ देख ले तो सारा जगत दिख जाना चाहिये और फिर यह भेद न रहना चाहिए कि यह भींट है यह चौकी है यह पुस्तक है क्योंकि एक ही शब्द ब्रह्म है। तो यह बात सिद्ध नहीं होती कि शब्दरूप यह जगत परिणमता है इसलिये जगत शब्दमय है,

विश्वके शब्दमयत्वकी सिद्धिमें शब्दसे विश्वकी उत्पत्तिके हेतुकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

असिद्धि—विश्वकी शब्दमयताकी सिद्धि करनेमें यह भी नहीं कह सकते कि इस विश्व की उत्पत्ति शब्दोंसे होती है अत: जगत शब्दमय है। तुमने तो शब्दको अविकारी माना और शब्दसे उत्पत्ति भी होती विश्वकी, तो क्रमसे होगी या एक साथ ? क्रमसे क्यों होगी ? जब शब्द एक रूप है और शब्दसे जगत उत्पन्न होता है तो भूत कालकी पर्यायें भविष्यकालकी पर्यायें सब एक साथ बन जायें, समस्त कार्य एक साथ बन जाने चाहिए। अरे कारणमें कमी हो तो कार्यमें विलम्ब होता है। तुम्हारा कारण है शब्द और वह है सदा, फिर एक साथ सारे काम क्यों नहीं हो जाते ? तो शब्दसे जगतकी उत्पत्ति नहीं है। यह सारा विश्व अनादिसे ऐसा ही चला आया है, इसमें परिणमन होते रहते हैं। ये सब मैटर अनादिसे हैं और अनन्त काल तक रहेंगे। इन की पर्यायें बदलतीं रहतीं हैं।

ज्ञानस्वरूप परिपूर्ण स्वतन्त्र आत्माका अस्तित्व अभी हम आप लोग अपनी योग्यतासे उपाधिके सम्बन्धसे कुछ विकारी बन रहे है, कषायें हैं रागद्वेष मोह हैं। ज्ञान बन जायगा, स्वरूपकी पहिचान हो जायगी तो ये विकार भी दूर हो जायेंगे मैं सत् जीव अनादिसे हूँ और अनन्त काल तक रहूँगा, न मेरी कभी उत्पत्ति होती है और न विनाश होता है। गीतामें भी यह लिखा है— 'नासतो विद्यतेभाव:' जो असत् पदार्थ है उसका कभी उत्पाद नहीं होता और जो सत् पदार्थ है उसका कभी विनाश नहीं होता। वैज्ञानिक भी कहते हैं कि जो भी वस्तु है सत् है उसका कुछ बन सकता है और जो सत् ही नहीं है उसका क्या बन सकता है ? हम आप सत् हैं, प्रत्येक पदार्थ सत् हैं। यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। जो ये दिखने वाले भौतिक पदार्थ हैं रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वाले हैं वे सब पदार्थ हमसे जुदे हैं। यों भेदविज्ञान करके अपने ज्ञान स्वरूप तक पहुंचे तो यही एक धर्मपालन है और इससे ही वह आत्मबल प्रकट होता है कि भव-भवके बांधे हुए कर्म नष्ट हो जाते हैं, यही मुक्तिका उपाय है।

ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वके अनुभवसे कल्याणलाभ— हम अपने आपको सबसे न्यारा केवल ज्ञानस्वरूप मात्र अनुभव करनेकी चेष्टा करें। ऐसा चिन्तन बने तो यही है इस जीवनकी वास्तविक कमाई। जो बात सत्य है उसका ज्ञान करना नियम से लाभदायक है परमार्थ सत्य यह मैं ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा हूँ, सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ। जो प्रभुका स्वरूप है वह स्वरूप मुझमें है। लोग कहते हैं ना कि घट-घटमें प्रभु विराज रहे हैं। वह घट-घटमें याने प्रत्येक जीवमें प्रभु किस तरहसे विराज रहा है उसके निरखनेकी कला याद हो तो अपने उस प्रभुके दर्शन कर सकते हैं। प्रभुके दर्शन आँखें खोलकर बाहरमें नहीं होते। बाहरमें मूर्ति आदिके दर्शन इसलिए किए जाते हैं कि हमको अपने आपमें विराजे हुए प्रभुकी याद आ जाय। तो मोह राग द्वेष त्याग कर जब केवल ज्ञानस्वरूप मैं हूँ, ज्ञानमात्र मैं हूं इस प्रकारका चिन्तन चलता है तो ज्ञानानुभूति होती है और प्रभुके वहाँ दर्शन होते हैं। वास्तवमें यह काम करनेको है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सब कुछ करते हुए ज्ञानद्रष्टा रहें और अपनेको सबसे न्यारा निर्लेप ज्ञानस्वरूपमात्र जाननेकी चेष्टा करें तो इससे आत्मदर्शन होते हैं, इसीसे सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

शब्दसे जगतकी उत्पत्तिका विडम्बित मन्तव्य– शब्दब्रह्मवादी दार्शनिक यह कह रहा है कि जगतमें केवल शब्द ही भगवान है। शब्दब्रह्मके सिवाय दूसरा कोई सत् नहीं है। जितना जो कुछ यह कार्यसमूह दिख रहा है वह सब शब्दब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है, तो इसपर उनसे यह पूछा जा रहा है कि यह जो घटपट आदिक अनेक पदार्थोंका समूह है यह क्या शब्दब्रह्मसे जुदा है या शब्दब्रह्मसे अभिन्न उत्पन्न हुआ है? वह शब्दब्रह्म जिससे यह जगत बनता है तो यह जगत शब्दब्रह्मसे न्यारा बन रहा है या शब्दब्रह्मसे अभिन्न बन रहा है ? यदि शब्दब्रह्मसे न्यारा विश्व उत्पन्न है तो यह कैसे कह सकते कि शब्दब्रह्म ही इन जगतके रूपोंको प्राप्त किए है। और, फिर शब्द-ब्रह्मकी ये पर्यायें हैं, यह तो नहीं कह सकते, क्योंकि तुम्हारा शब्दब्रह्म जुदा है और ये मकान आदिक सारे पदार्थ जुदे हैं। शब्दब्रह्मकी पर्यायें तो नहीं रहीं। कहीं ऐसा नहीं देखा जाता कि भिन्न चीजसे भिन्न चीजका उत्पाद हो तथा जो दूसरेके स्वभावका आश्रय न करे और उसे तद्रूप करे। जैसे कपड़ा बनता है तो यह कपड़ा मिट्टीसे न्यारा बना ना, तो कपड़ेको कोई मिट्टीरूप कह देगा क्या ? ऐसे ही ज्ञान भगवानको व इन घटपट आदिकोंको शब्दरूप कैसे कह देंगे ? शब्दरूप जुदा है और यह विश्व जुदा है, फिर शब्दब्रह्मकी पर्याय नहीं कह सकते। यदि यह कहें कि ये जितने भी कार्य बनते हैं महल मकान आदि ये सब शब्द ब्रह्मसे अभिन्न हैं तो फिर शब्दब्रह्म अनादि निधन न रहा। अर्थात् जैसे ये पदार्थ उत्पन्न होते, नष्ट होते तो उसके साथ शब्दब्रह्म भी उत्पन्न होगा, नष्ट होगा। फिर शब्द ब्रह्म कभी नित्य नहीं रह सकता।

विभिन्न विचित्र विलक्षण जगतकी अभेद एकरूप सांवृतिक शब्दब्रह्मसे अनुत्पत्ति देखिये एक ऐसा भी विलक्षण सिद्धान्त है कि जैसे कोई लोग मानते हैं कि ईश्वरसे जगत बना है, यों ही कोई यह मानते हैं कि शब्दसे संसार बना है। सारा संसार शब्दरूप है लेकिन यह बात न किसी प्रत्यक्षसे सिद्ध है और न किसी प्रमाणसे। सब पदार्थ शब्दरहित नजर आते हैं। शब्द भी एक अलग चीज है, पदार्थ भी अलग चीज है। तो शब्दब्रह्मवादका सिद्धान्त शब्दब्रह्मको अनादि निधन मानता है, एक स्वभाव मानता है। तो यहां शब्द ब्रह्मवादी कह रहे हैं कि यह जो सारा जगत है यह शब्दसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है ऐसा माननेका कारण उन्होंने यह समझा है कि जिस पदार्थको हम जानते हैं, निरखते हैं तो जाननेके साथ उस पदार्थके नाम वगैरह हृदयमें उठ आते हैं। तो इससे उन्होंने यह सिद्ध किया कि पदार्थ सब शब्दरूप हैं तभी तो पदार्थोंके जाननेके साथ ही शब्द उठ आया करते हैं। किन्तु जैन सिद्धान्त यह कहता है कि ये पदार्थ इनकी वर्गणायें इनका पिण्ड कुछ न्यारे मैटरसे बना है और शब्दकी उत्पत्ति किसी न्यारे मैटरसे बनी है, ये जुदे–जुदे पुद्गल हैं तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यहाँ जो उनसे पूछा जा रहा कि यदि शब्दसे ही इस जगतकी उत्पत्ति हुई है तो फिर यह सारा जगत विचित्र क्यों मालूम होता है ? शब्दब्रह्म तो एक है।

शब्दब्रह्मकी कल्पनामें अविद्या, लोकव्यवस्था, ज्ञानज्योतिकी असिद्धि जैसे ईश्वरसे अगर यह जगत बन गया तो ईश्वर तो एकरूप है फिर ये नाना रूप कैसे बन गए ? ऐसा प्रश्न किया जा सकता है ना ? इस प्रकार जो मानते हैं वे शब्दब्रह्म से जगत उत्पन्न होता है तो शब्दब्रह्मको तो एक स्वभाव माना है. फिर यह जगत नानारूप क्यों हो गया ? तो इसके उत्तरमें पूर्वपक्षकार यह सिद्धान्त रख रहे हैं कि यद्यपि शब्दब्रह्म अनादिनिधन है अभिन्न स्वभाव है लेकिन इन जीवोंपर अविद्याका अन्धकार लगा है इस कारण उन्हें उत्पत्ति विनाशकी तरह नाना कार्य और विचित्रताएँ मालूम पड़ रही हैं। जैसे ब्रह्मवादी भी यह कहते कि जगतमें केवल एक ब्रह्म है और ये जो नाना कार्य हैं ये सब मिथ्या हैं, झूठ हैं, स्वप्नवत् हैं, इंद्रजाल हैं। इसी तरह यह कह रहे हैं कि तत्त्व तो एक शब्दब्रह्म है फिर ये नाना कार्य जो विचित्र नजर आ रहे हैं ये अज्ञानके कारण नजर आते हैं। इस विषयमें वे एक दृष्टान्त दे रहे हैं कि जैसे आकाश तो एकस्वरूप है, विशुद्ध है लेकिन जिनकी आँखोंमें तिमिर रोग हो जाता है उन्हें ऐसा लगता है कि नाना रेखाओंसे यह आकाश बना है। इस आकाशमें उन्हें रेखाएँ रेखाएँ ही नजर आती हैं। तो ऐसे तिमिर रोगवालेको आकाश में चित्र–विचित्र रेखायें मालूम होती हैं। इसी तरह शब्दब्रह्म तो निर्मल है, निर्विकार है किन्तु अज्ञानसे, कलुषतासे प्राप्त हुआ यह सारा जगत भिन्न–भिन्न रूप दिखाई देने लगता है। आचार्यदेव समाधान कर रहे हैं कि ये सारी तुम्हारी बातें मनगढ़न्त हैं। इस तत्त्वमें कोई प्रमाण नहीं है। शब्दब्रह्मका स्वरूप जो बताया कि शब्दब्रह्म स्वभावी है, नित्य है, वह न तो प्रत्यक्षसे जाननेमें आ रहा और न अन्य प्रमाणोंसे जाननेमें आ रहा। सारे पदार्थ न्यारे–न्यारे केवल पदार्थ ही दिखते हैं। यह पुस्तक है, यह चौकी है, यह मकान है ये सारे पदार्थ न्यारे–न्यारे दीखते हैं शब्द कहाँ नजर आते शब्द कोई एक आधारभूत चीज नहीं है। आधारभूत चीजें तो ६ द्रव्यों जातियोंमें है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल।

स्याद्वाद शासनमें वस्तुस्वरूपके यथार्थ प्रकाशकी प्रधानता - जैन सिद्धान्तमें कितनी स्पष्टतासे तत्त्वका स्वरूप बताया है। कोई यदि यह पूछे कि नियम व्रत तप तो और लोग भी करते हैं, जैन भी करते हैं, हिंसा, झूठ आदिकका निषेध और लोग भी कहते हैं, जैन सिद्धान्त भी करता है। जैन सिद्धान्तमें ऐसी खास बात क्या है जो अन्यत्र न पायी जाय ? तो जैन सिद्धान्तमें सबसे मुख्य चीज है पदार्थके स्वरूप का यथार्थ निर्णय। देखिये ६ जातिके पदार्थ माने हैं- जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म आकाश और काल। तो जाति वह होती है कि जिसमें उस जातिकी सब चीजें आ जायें कोई छूटे नहीं। और दूसरी जातिका उसमें कुछ आये नहीं तब तो जाति बनती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जातिके बननेका कायदा ही यह है कि उस जातिके सब पदार्थ इसमें आ जायें और भिन्न जातिका पदार्थ न आने पाये तब वह जाति बनती है। तो जीव कहनेसे जितने चेतन हैं वे सभी आ गए। परमात्मा भी आत्मा है और संसारी भी आत्मा है, पशु-पक्षी आदिक जितने भिन्नत रहके आत्मा हैं वे सब जीव जातिमें आ गए। जो भी अचेतन हैं, पुद्गल हैं वे सब जीवसे दूर हैं। यों जीव जुदा है पुद्गल जुदा है पुद्गलका स्वरूप है जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श पाया जाय। तो पुद्गलमें सभी पुद्गल आ गए। शब्द भी पुद्गल हैं और ये जो दिखने वाले पदार्थ हैं ये भी पुद्गल हैं। जीवके साथ जो सूक्ष्म कर्मोंकी उपाधि लगी है वह भी पुद्गल है। जीवके साथ जो शरीरकी उपाधि लगी है, वह भी पुद्गल है। ऐसे ही धर्म, अधर्म, आकाश काल भी स्वतंत्र स्वतंत्र पदार्थ हैं।

द्रव्य जातियां—जैसे अन्य लोग चारुवाक आदिक पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार तत्त्वोंको जुदा-जुदा मानते हैं, पर पृथ्वी कभी जल बन सकता है, जल के परमाणु कभी अग्नि बन सकते हैं, अग्नि कभी वायु बन सकती है, ये चारों कालान्तरमें अदल बदल सकते हैं इस कारण इनकी मुख्य जाति नहीं है, एक पुद्गल ही जाति है। धर्म द्रव्य एक ऐसा द्रव्य है जो चलते हुये जीव पुद्गलको चलानेमें सहायक होता है। जो ईथर है, सूक्ष्म है, सर्वत्र व्यापक है, जिसके बिना गति नहीं हो सकती। जिसके सम्बन्धमें वैज्ञानिक भी अनुभव करते हैं कि आकाशमें कुछ श्रेणियां हैं जिनके सहारे पदार्थ चला करते हैं। अधर्म द्रव्य वह है जो जीव पुद्गलके ठहरनेमें मदद करे आकाश यह है ही। काल द्रव्य पदार्थके परिणमनमें सहायक हैं। जैसे २४ घंटे न गुजरें तो वह कार्य न बने जो २४ घंटे गुजरनेसे बनता है। जैसे यहां से दिल्ली जाना है रेलसे तो तीन घंटे गुजरे तभी तो दिल्ली पहुंचेंगे। तो यह कालका उपकार है कि पदार्थोंका परिणमन होता रहता है।

पदार्थोंका स्वरूपास्तित्व—भैया ! पदार्थ ६ जातिके होते हैं, लेकिन धर्म, अधर्म, आकाश तो एक एक ही हैं, किन्तु जीव व पुद्गल अनन्त हैं व काल असंख्यात हैं। जीव जातिमें जीव अनन्त हैं, सबके कर्म अलग–अलग परिणमते हैं, सबके कर्म अलग–अलग हैं, जन्म–मरण भी सबका अलग–अलग है। तो ये सब जीव अनन्त हैं, ये संसारी जीव ही ज्ञानके प्रतापसे तपश्चरणके प्रतापसे मुक्त होते हैं। अनन्त जीव मोक्ष गये हैं और उनसे अनन्त गुने संसारमें हैं। तो जीव जातिमें अनन्त जीव आ गए वे सब स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नहीं है। यह बात सब पदार्थोंमें पायी जाती है। दृष्टान्तके लिए यह चौकी है, यह पुस्तक है तो चौकीकी सत्ता पुस्तकके रूप है या चौकीके ही रूपसे है ? चौकीरूपसे ही है। अगर चौकीकी सत्ता पुस्तकके रूपमें हो जाय तो न चौकी ही रही और न पुस्तक ही रही। इसी तरह जगतमें एक–एक परमाणु प्रत्येक स्कन्ध, प्रत्येक जीव ये सब केवल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपनी-अपनी सत्तासे हैं। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थकी सत्तामें हो जाय, दूसरेके रूपसे सत् बन जाय तो न यह रहा न वह रहा। जो भी पदार्थ हैं वे अपने-अपने अस्तित्वसे हैं, अपने स्वरूपसे हैं, परके स्वरूपसे नहीं।

स्वरूपपरिचयका साधन—स्वरूप विदित होता है चार विभागोंमें, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। जैसे चौकीका जो पिण्ड है वह द्रव्य है। जितनेमें फैली है वह क्षेत्र है। चौकीका जो परिणमन है वह चौकीका काल है, और चौकीमें जो शक्ति है, गुण है वह चौकीका भाव है। तो चौकीका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चौकीमें है, पुस्तक का पुस्तकमें है। तो इसका अर्थ यह भी तो निकला कि चौकी अपने परिणमनसे परिणमती है पुस्तकके परिणमनसे नहीं परिणमती। आपने मान लो कोई गालीका शब्द दिया और हम दुःखी हुए तो हम आपके शब्दसे दुःखी नहीं हुए। आपके परिणमनसे दुःखी नहीं हुए, किन्तु हम अपनेमें कल्पनाएँ बनाते और अपनेपर घटाते तो हम अपने ही परिणमनसे दुःखी हो जाते, आपके परिणमनसे दुःखी नहीं होते। तत्त्व यह कहा है और इससे भेद विज्ञानकी दिशा मिलती है व निर्मोहता प्रकट होती है। तो मोह दूर करनेका सही उपाय जैन सिद्धान्तमें मिलता है।

स्वरूपास्तित्वके यथार्थ बोध बिना मोहसंकटका मिटना असम्भव—भैया! ऊपरी बातें सुनकर तो मोह दूर नहीं होता। जैसे परिवार आपत्तिका घर है। स्त्री पुत्रादिक नरक आदिक दुर्गतियोंमें पठाने वाले हैं, सब स्वारथके साथी हैं, बातोंको सुनकर मोह दूर नहीं होता। मूलसे मोह तो तब गलेगा जब स्पष्ट यह नजर आयेगा कि प्रत्येक पदार्थ बिलकुल भिन्न-भिन्न हैं। एकका दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता। यह बात स्पष्ट ज्ञानमें आये तो मोह गल सकता है। मोहका ही संसार है। मोहसे ही सारे क्लेश हैं। मोह मिटे तो मोक्ष होता है। मोह न मिटे जो जन्म-मरण की परम्परा चलती ही रहेगी। मोह करके पशु पक्षी कीट मकोड़ा आदिक पर्यायोंमें ही रुलते रहे तो फिर कल्याणका अवसर कब मिल पायगा? इस समय जो नर भव की हम आपको स्थिति मिली है वह बड़े सोभाग्य और सन्तोषकी बात है। हमें चाहिए अपने आपमें सन्तोष भाव लायें, सन्तुष्ट रहा करें हर बातोंमें यह गुण उत्पन्न करें क्योंकि सन्तुष्ट न रहें, कोई तृष्णा जगायी, कल्पनाएँ बनायीं, चिन्ताएँ बनायीं तो उससे आत्माको कुछ भी लाभ प्राप्त न होगा।

अनावश्यक वैभव—जो भी यहाँ वैभव मिला है उसे यह जरूरतसे ज्यादा है यह सोचना चाहिए। यह बात दूसरोंपर घटाकर जल्दी समझमें आ जाती है, अपने आपपर घटानेसे कठिन होगी। जैसे बिड़ला है साहू जी हैं उनके पास वैभव जरूरतसे ज्यादा है या नहीं? अरे चाहिए सिर्फ पेटके लिए दो रोटियाँ और ठंढसे बचनेके लिए दो मोटे कपड़े। इसके अतिरिक्त ऐसी कौन सी जरूरतें हैं जो अत्यन्त आवश्यक हैं,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिनके बिना हम आपका काम हो नहीं चल सकता है ? जो जिसके पास जो भी वैभव है वह जरूरतसे ज्यादा है ऐसा सोचना चाहिए। जरूरतकी चीजोंमें मुख्य दो बातें हैं—भूख प्यास शान्त रहे और सर्दी गर्मी न लगे। इनके सिवाय ऐसी कोई खास बात नहीं है जिसके बिना काम न बने। रही इस मायामयी संसारमें अपनी पोजीशन बनानेकी बात तो इसमें तो वैभव कितना चाहिए इसकी कुछ भी हद नहीं है। जिन–जिनके पीछे रात दिन चिन्ता की जाती है वे सब एक दिन नष्ट हो जायेंगे। जरूरतकी दृष्टिसे देखिये कोई हजारपति पुरुष है तो उसके भी जरूरतसें ज्यादा धन है कि नहीं? इस बातको समझनेके लिए अन्य जो बहुतसे गरीब लोग हैं उन्हें ले लीजिए। उनकी भी जरूरतें पूरी होती हैं कि नहीं ? जिसके पास ५ बीघा जमीन है उसके भी पास जरूरतसे ज्यादा है क्योंकि जिसके पास दो ही बीघा जमीन है उसका भी काम चलता है कि नहीं ? तो जिसके पास जो भी है वह जरूरतसे ज्यादा है इसमें कुछ भी संदेह रखनेकी बात नहीं है। भैया ! पुण्यके अनुसार जो भी प्राप्त होता है उसमें ही अपनी व्यवस्था बना लें और उत्तरोत्तर धर्मपालनकी तृष्णा बनायें। बजाय विभूति की तृष्णाके धर्मपालन, ज्ञानार्जनकी तृष्णा बनायें। इससे लाभ है इसलिए इस बात को बता रहे हैं। जो भी अपने पास वैभव हो उसे जरूरतसे ज्यादा है ऐसा मानकर सन्तोष मनमें धारण करना चाहिए। क्योंकि, हमारा जीयन यदि सन्तोषपूर्ण नहीं है तो वह जीवन तो दुःखी है। सन्तोष आयगा सही ढङ्गसे तो इस भेद विज्ञानके बाद आयगा।

शान्तिलाभमें जैन शासनकी अतुल देन—जैन शासनमें भेद विज्ञानकी बात जिस ढङ्गसे बतायी गयी है वह ढङ्ग अन्यत्र मिलता नहीं है अतएव जैन शासन की सबसे बड़ी देन है वस्तुस्वरूपका यथार्थ निर्णय। प्रत्येक पदार्थ अपने–अपने स्वरूपसे है ऐसी जानकारीमें यह तत्त्व निकला कि मुझे जो भी सुख दुःख होते हैं वे मेरे ही विचारोंसे होते हैं किसी अन्यके परिणमनके कारण मेरेमें सुख दुःख नहीं होते। हम ही अन्य पदार्थोंके प्रति कल्पनाएँ बनाकर सुखी अथवा दुःखी होते हैं। जैसे एक वेश्या गुजर गयी लोग मरघटमें लिए जा रहे हैं उसे देखकर कामी पुरुष सोचता है कि यदि यह कुछ दिन और जीवित रहती तो मैं इससे और प्रेम करता। एक साधु उसे देखकर सोचता है कि इसने बड़ी दुर्लभतासे यह मानव जीवन पाया था और इसने सारा जीवन यों ही व्यसनोंमें पड़कर खो दिया। यदि इस जीवनको तपश्चरणमें संयममें, ज्ञानमें, सत्य श्रद्धामें लगाती तो यह अपने जीवनको सफल कर लेती, साधु तो ऐसा सोचता है। मरघटमें जो कुत्ते और स्याल वगैरह हैं वे सोचते हैं कि यदि ये इसे फूकें नहीं, यों ही छोड़ जायें तो हमारे १०–२० दिनका भोजन हो जायगा। तो तीन तरहके जीव हैं उनके तीन तरहके भाव हैं। इससे यह निर्णय हो कि हम जैसे अपने भाव बनाते हैं वैसे ही सुख दुःख पाते हैं। कोई प्रशंसा कर रहा हो तो उसमें कल्पनाएँ बनाकर हम सुखका अनुभव करते हैं और कोई निन्दा करता है तो उसमें कल्पनाएँ बनाकर हम दुःखका अनुभव करते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मकल्याणके अर्थ आत्मस्वच्छताका कर्तव्य— हम अपने ही विचारोंसे अपनेमें सुख दुःखका अनुभव करते हैं ऐसा जानकर हमें अपने आपकी सिद्धिकी जरूरत है, बाह्य पदार्थोंके अनुग्रह विग्रहकी जरूरत नहीं है। जैसे लोग कहते हैं कि कुवा नहीं छनता है अपना ही लोटा छनता है। तो यों समझो कि हम अपने आपमें ही अपने ज्ञानको बनायें; अपने आपका ही सत्य श्रद्धान बनायें, सबसे न्यारा ज्ञानमात्र अनुभव करने वाला बनायें तो हम सुखी हो जायेंगे। यह बात जो भी संत पुरुष अपने आपमें ढाल लेते हैं वे तो संसारसे पार हो जाते हैं और जो इस भेद विज्ञानको अपने चित्तमें नहीं बसा सकते वे संसारमें रुलते हैं। मुक्तिका सत्य उपाय इस दर्शनसे प्राप्त हो सकता है। इस जैन दर्शनसे हम जितने उपकृत हुए, उस उपकारका बदला किसी भी प्रकार से नहीं चुकाया जा सकता है। तो हमारा काम है कि इन ग्रन्थोंके स्वाध्यायमें, ज्ञान की अर्जनामें हम अधिकाधिक अपना सब कुछ न्योछावर करें और एक ज्ञानकी बात समझ जायें तो समझ लीजिए कि हमने बहुत बड़ा वैभव प्राप्त किया।

एकान्तवादमें योगिपुरुष और योगकी असिद्धि— यह विश्व ६ जातिके पदार्थोंका समूह है—जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन पदार्थोंमेंसे किसी भी एक पदार्थके किसी धर्मकी मुख्यता देकर अनेक दार्शनिकोंने अपने जुदे-जुदे मंतव्य बनाये हैं, शब्द ब्रह्मवादी एक शब्द वर्गणात्मक पुद्गलके शब्द परिणमनकी व अपने अन्तर्जल्पकी दिशाका हठ करके यह कह रहा है कि सारा जगत शब्दरूप है। शब्दके सिवाय दुनियामें अन्य कुछ नहीं है। जो भी पदार्थ दिखते हैं वे सब शब्दमय हैं। तो उनसे पूछा गया कि ऐसा तो किसीको नजर नहीं आता कि सारे पदार्थ शब्द रूप हैं। तो इसपर वे उत्तर देते हैं कि जो बड़े योगी पुरुष होते हैं। जो बड़े धर्म कार्यमें लगे हैं मोक्ष और स्वर्गके फलको देने वाले धर्मसे जिनका चित्त अनुगृहीत हुआ है ऐसे योगी ही इस शब्द ब्रह्मको देख पाते हैं। यह कहना भी उनका ठीक नहीं, क्योंकि जब सब कुछ शब्दरूप ही है तो फिर योगी अलगसे आये कैसे ? इस शब्द ब्रह्मवादीने यह कहा है कि सब पदार्थ शब्दरूप है, जो भी हमें नजर आया। जो भी हमें ज्ञात हुआ वह सब शब्दरूप हुआ। तो जब शब्द ब्रह्म ही है तो योगी भी वही एक नित्य शब्द ब्रह्म हुआ; वास्तविक योगी तो नहीं रहे जिससे यह कह सकें कि वे देखते हैं। यदि शब्दात्मक ब्रह्मके ज्ञानमें योगियोंका व्यापार हो तभी तो देखनेकी बात कही जा सकती। शब्द ब्रह्मको तो नित्य मानते हैं फिर उसमें विकल्प हो ही नहीं सकते। तो यह जगत शब्दरूप है यह सिद्ध नहीं होता।

एकान्तवादमें अविद्या व विश्वकी असिद्धि—यह जगत जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन द्रव्यरूप हैं और उनमें जो आत्मा नामक द्रव्य है वह ज्ञानरूप है, उससे तो ज्ञान परिणमन बनता है और बाकी पदार्थ केवल ज्ञेयरूप हैं। यों है विश्वकी व्यवस्था, न कि सारा विश्व शब्द ब्रह्म हो और फिर उसकी पर्यायें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हों। और, जो यह कहते हैं कि लोगोंको अविद्यासे, अज्ञानसे ऐसा लग रहा है कि ये भींट चौकी आदिक पदार्थ नहीं हैं, यह तो एक शब्दब्रह्म ही है ऐसा कहना भी ठीक यों नहीं है कि अविद्या भी तो शब्दब्रह्म ही हुई। जो कुछ है वह सब शब्दब्रह्म है तो अविद्या अलगसे कुछ चीज नहीं हुई फिर वह शब्द प्रतिभासका कारण कैसे बना ? आकाशमें कभी–कभी रेखायें सी दीखती हैं उसे, जिसको तिमिर रोग होता है तो तिमिर रोग तो कोई अवस्था है कुछ चीज है, आँखोंका रोग है सो आकाशमें रेखायें दिखने लगती हैं, मगर अविद्या तो कुछ चीज ही नहीं है तब तुम्हारा दृष्टान्त दार्ष्टान्त से मेल नहीं खाता। यह जगत शब्दात्मक नहीं है।

शब्दब्रह्मकी अनुमानसे भी असिद्धि—इस ग्रन्थमें प्रमाणका स्वरूप चल रहा है इस प्रकरणमें। प्रमाण किसे कहते हैं ? जो ज्ञान स्वपर पदार्थका निर्णय करा दे कि अमुक तत्त्व ऐसा ही है, जो हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करा दे वह ज्ञान प्रमाण रूप है। ऐसा कहनेपर शब्द ब्रह्मवादने यह कहा था कि ज्ञान प्रमाणरूप तो है किन्तु ज्ञान शब्द रचनासे अलग कुछ चीज नहीं है। तो जो शब्दात्मक है वही प्रमाण चीज है। इस सिद्धान्तके सम्बन्धमें बहुत विचार विमर्श किया गया। उससे शब्दब्रह्मकी सिद्धि नहीं होती। शायद यह कहो कि हम अनुमानसे शब्दब्रह्मका ज्ञान करने लगें तो अनुमान या तो कार्य लिङ्ग वाला हो या स्वभावादि लिङ्ग वाला हो। स्वभावरूप कारणरूप, कार्यरूप साधनसे ही तुम्हारे साध्यकी सिद्धि होती है क्योंकि अनुपलब्धि आदि साधनसे साध्यविज्ञानके अनुमान जिनके निषेधरूप हेतु बनें वे तो माने ही नहीं गये हैं। तो यहां कोई कारण या कार्य ऐसा दीखता नहीं है कि जिससे हम जानें कि यह सारा विश्व शब्दरूप है और फिर शब्दब्रह्म तुम्हारा नित्य है, एक-स्वभावी है, उससे कार्यकी उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। और, यदि किसी नित्य पदार्थ से कार्य बनने लगे तो यह बतावो कि वे सब कार्य क्रमसे होंगे या एक साथ ? क्रमसे तो यों ठीक नहीं कि जब कारण समर्थ है, सदैव मौजूद है फिर क्रमसे होनेकी बात क्या ? सब एक साथ हो जाना चाहिए। और, एक साथ होते नजर नहीं आते। इस से किसी कार्यसे भी यह नहीं सिद्ध कर सकते कि जगतमें एक ही शब्दब्रह्म है, शब्द-भगवान है उससे इस जगतकी सृष्टि बनी है। कोई मानते हैं कि ज्ञानानन्द स्वरूप भगवान है और उससे इस जगतकी सृष्टि बनी, तो यहाँ मान रहे हैं कि केवल शब्द ही शब्दका नाम भगवान है और उससे जगतकी सृष्टि बनी। तो कार्य हेतु दे करके शब्दब्रह्मकी सिद्धि नहीं होती। और, स्वभावसे भी शब्दब्रह्मकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि स्वभाववान शब्दब्रह्म ही सिद्धि नहीं है तो स्वभावकी सिद्धि क्या होगी। जब कोई पदार्थ ही सिद्ध नहीं तो उसका स्वभावभूत धर्म क्या अलगसे मानोगे ?

विश्वविभाग—शब्दब्रह्म तत्त्वभूत नहीं, किन्तु यह मानो कि चेतन अचेतन ऐसे दो भागोंमें विभक्त यह सारा विश्व है उसमें जो चेतन तत्त्व हैं वे सब जानने वाले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं और जाननेमें आते है और जो अचेतन तत्त्व हैं वे मात्र जाननेमें आते हैं। इस विश्वको तुम शब्दब्रह्मरूप न मानों। शब्दब्रह्म कोई अलग वस्तु नहीं है। ये शब्द जो सुनाई देते हैं ये एक पृथक् प्रकारकी वर्गणायें हैं। जो कुछ ये नजर आ रहे हैं ये शब्द नहीं हैं न ये शब्दके कारण हैं। शब्दका उपादान भूत शब्दवर्गणायें अलग ही होती जो सर्वत्र व्यापक हैं। जब किसी पदार्थकी टक्कर और किसी प्रकारका वियोग होता है तो उन सब वर्गणावोंसे शब्दका विकास होने लगता है। तो वह शब्द अलग वस्तु है। सारा विश्व शब्दमय न हो जायगा। तब यह तुम्हारा जो कहना था कि समस्त भाव शब्दके आकारसे बद्ध हैं सो वे शब्दमय हैं क्योंकि जो जिस आकारमें बंधे हुए हैं वे तन्मय हुआ करते हैं। हम जब किन्हीं पदार्थोंको जानते हैं तो जाननेके साथ ही भीतरमें शब्द भी उठ जाते हैं तो मालूम होता है कि वे पदार्थ सारे शब्दरूप हैं। भींट देखा तो भींटका ज्ञान करते ही चित्तमें भींट ऐसा शब्द उठ जाता तो मालूम होता कि यह भींट शब्दरूप है। जो जिस आकारमें अनुस्यूत होता है वह उसमें तन्मय होता है। जैसे घड़ा दिया आदिक ये सब मिट्टीका आकार रखते हैं तो ये मिट्टीमय प्रसिद्ध हैं इसी प्रकार जब इन पदार्थोंका ज्ञान करते हैं तो शब्द उठते हैं। तो ये सारे पदार्थ शब्दमय हैं, ऐसा जो शब्दब्रह्मवादने कहा है वह केवल कहना मात्र है क्योंकि शब्दाकार कहाँ कौन पदार्थ नजर आता ? प्रत्येक पदार्थ अपने–अपने सही सकलमें नजर आते हैं। पदार्थ जुदा है शब्द जुदा है। जैसे जब हम नीले पीले पदार्थोंको जानते हैं तो शब्दरहित ही इन पदार्थोंको जानते हैं। शब्द भीतरमें उठ जाते यह हमारा भीतर का परिणमन है और वहाँ भी जो मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ उसमें तो अन्तर्जल्प भी नहीं होता है।

शब्दकी पुद्गलद्रव्यपर्यायरूपता– ये सारे पदार्थ शब्दरहित ही मनुष्योंको जाननेमें आ रहे हैं। शब्दब्रह्म केवल काल्पनिक हैं वास्तविक चीज नहीं है अतएव शब्दब्रह्मकी सिद्धि नहीं है। न तो उनमें शब्दरूपता सिद्ध है न शब्दका आधार बन रहा है फिर भी जबरदस्ती तुम शब्दमय मानोगे तो ऐसी कल्पनासे तो पारमार्थिक शब्दब्रह्मकी सिद्धि नहीं हो सकती है। शब्द भी एक परिणमन है। जैसे यह पुद्गलका परिणमन है प्रकाश, उद्योत, बंध, पतला होना, मोटा होना, उसका आकार बनना, पदार्थका न्यारा हो जाना, पदार्थका जुड़ जाना, ये पुद्गल द्रव्यकी पर्यायें हैं वैसे ही शब्द उत्पन्न होना भी पुद्गल द्रव्यकी पर्यायें हैं, गुण पर्याय नहीं है, किन्तु प्रदेश पर्याय है। गुणपर्याय तो चार प्रकारके हैं - रूप, रस, गन्ध, स्पर्श। पुद्गलमें गुण चार हैं– उनका जो भी परिणमन है वह गुण परिणमन है। इसके अतिरिक्त जो परिणमन ऐसे हैं कि कभी हो जाय कभी न हो जाय, उनका प्रतिपक्ष परिणमन भी नहीं है वे सब प्रदेशके परिणमन हैं। जैसे यह छाया हुई है तो यह छाया चौकीका परिणमन है। कहते तो यों हैं लोग कि यह हाथकी छाया है मगर वह छाया जिसका परिणमन है उसकी है, वह है यहाँ चौकी। हाथका निमित्त पाकर वह छाया बनी। चौकीपर जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

छाया बनी वह छाया रूप परिणमन चौकीका है। चौकीपर जो प्रकाश है वह प्रकाश परिणमन भी चौकीका है। कहते तो लोग यों हैं कि यह सूर्यका प्रकाश है इस कमरे में, सूर्य तो है लाखों योजन दूर, उसका प्रकाश यहाँ कहाँ आ जायगा। यहाँ तो जिस वस्तुपर प्रकाश पड़ा है वह उस वस्तुका प्रकाश है। तो जैसे छाया प्रकाश ये सब पुद्गलके परिणमन हैं इसी तरह शब्द भी पुद्गलका परिणमन है। शब्द कोई भिन्न अखंड तत्त्व नहीं है।

शब्द और अर्थके तादात्म्यकी असिद्धि शब्द ब्रह्मवादका यह सिद्धान्त है कि सारा विश्व शब्दरूप है और वह एकात्मक है लेकिन न तो एकात्मक नजर आ रहा है और न शब्दरूप नजर आ रहा है। प्रत्येक पदार्थ कभी एक दूसरेसे समानतामें मिल भी जाते कभी नहीं भी मिलते। यों भिन्न भिन्न प्रकारके नजर आते हैं, और मोटी बात तो यह है कि यदि ये शब्द पदार्थ शब्द स्वरूप होते तो इन पदार्थोंका ज्ञान होनेपर शब्दका भी तुरन्त ज्ञान होना चाहिये फिर तो जो बहिरे लोग हैं वे आंखों से तो देखते हैं ना। तो जब पदार्थ शब्दरूप हैं तो उनको देख कर ही शब्दका भी ज्ञान बहिरोंको हो जाना चाहिए। या शब्द और पदार्थ एक हैं तो जिस समयमें हम बोलें पत्थर तो जिसको पत्थर शब्द सुननेमें आया है यों जो बोल रहा है उसको चोट लग जाना चाहिए क्योंकि शब्द और पदार्थ एक चीज मान ली है। आग बोलें तो जल जाना चाहिए। तो यह तो बिल्कुल स्पष्ट बात है कि पदार्थ शब्दरूप नहीं मालूम होते। यह कल्पना हमने इसलिये उठाई कि चूंकि जानने वाले ये साधारण पुरुष, छद्मस्थ मनुष्य पदार्थोंको जानते ही अपने भीतर कुछ न कुछ शब्दोंकी कल्पना कर लेते हैं। उस शब्द कल्पनाके कारण ऐसा ज्ञात होता कि प्रत्येक पदार्थ शब्दरूप पड़े हुए हैं। पर, शब्दात्मक जगत नहीं है।

विश्व स्वतन्त्र अनन्त पदार्थोंका समूह – पदार्थ ६ जातिके हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जीव हैं अनन्तानन्त, पुद्गल हैं उनसे भी अनन्त गुने। धर्म, अधर्म और आकाश एक एक हैं व काल द्रव्य असंख्यात हैं। विश्वके मायने हैं इन छहों जातिके पदार्थोंका समूह। चाहे विश्व कहो, चाहे छहों जातिके पदार्थोंका समूह कहो। विश्व, सर्व, सकल ये सब विश्व शब्दके पर्यायवाची शब्द हैं। विश्व कुछ अलग बात नहीं है। तो ये समस्त पदार्थ स्वतन्त्र हैं, अपना अपना स्वरूप रखते हैं, क्योंकि प्रत्येकका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव न्यारा न्यारा है। यदि इस प्रकार की दृष्टि बन जाय कि प्रत्येक पदार्थ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है तो उसका मोह छिन्न हो सकता है।

भेदविज्ञानसे मोहका प्रक्षय – मोह मिटानेके लिए प्राय: सभी लोगोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार उपाय निकाले हैं। किन्हींने यह उपाय निकाला है कि यह सारी दुनिया ईश्वरका बगीचा है, इसमें मेरा कुछ नहीं है इस कारण मोह छोड़ो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ईश्वरकी सब चीजें हैं, हमारा कुछ नहीं यों विचारकर मोहको दूर करनेका प्रयत्न किया है। प्रयत्न तो किया है लेकिन अज्ञान अंधकार इसमें और आ गया है। इस ईश्वरके बगीचेकी मान्यतामें उन्होंने अपने स्वरूपको नहीं समझा है। यह मोहको दूर करनेका उपाय नहीं है। लौकिक जन प्रायः ऊपरी ढंगसे यह कहकर मोहको दूर करना चाहते हैं कि सब भिन्न हैं, कि न्यारे हैं, सब खुदगर्ज हैं; किसीका साथी नहीं हैं, सब धोखा है कोई किसीका होता नहीं; ऐसा सोचकर वे मोहको दूर करना चाहते हैं। यद्यपि ऐसा सोचनेमें पहिले मंतव्यसे कुछ ठीक है कि यह विश्व ईश्वरका बगीचा है हमारा कुछ नहीं, वहाँ तो तात्त्विक बात आयी न थी, यहाँ कुछ ठीक है। लेकिन ऐसा सोचनेमें भी केवल ऊपरी ऊपरी चिन्तन है। मूलमें ये भिन्न भिन्न मालूम पड़े यह बात तब ही विदित हो सकती है जब यह विदित हो जाय कि सबका अस्तित्व न्यारा न्यारा है किसी पदार्थसे किसी दूसरेकी त्रिकाल कोई क्रिया नहीं होती। निमित्त नैमित्तिक भावमें यह बात पड़ी हुई है कि अमुक किसी पदार्थका निमित्त पाकर, सन्निधान पाकर दूसरा पदार्थ खुद परिणमता है। निमित्त खुद उपादानके रूपमें नहीं परिणमता। इसी तरह उनके प्रदेश भी न्यारे हैं, उनका पिण्ड भी न्यारा हैं, उनका भाव और स्वरूप भी न्यारा है इस प्रकारका न्यारापन विदित हो तो वह है एक मौलिक भेदविज्ञान। और, उससे फिर मोहके छूटनेका अवसर प्राप्त होता है।

मोहसे विश्वविडम्बना— भैया! मोह ही एक विपदा है। यद्यपि सभी जीव ज्ञानानन्द स्वरूप हैं लेकिन विडम्बना यह बन रही है कि इस संसारमें रुल रहे हैं, शरीर ग्रहण कर रहे हैं; सम्मान, अपमान, सुख दुःखकी अनेक विडम्बनाएँ बन रही हैं। ये सब आपत्तियाँ क्यों लगी हैं? उनका कारण है कि इस जीवमें एक मोह भाव उत्पन्न हुआ है। अपना जो सहज स्वरूप है उसमें तो आत्मतत्त्वकी प्रतीति न की और जो भी समागम—सङ्ग प्रसङ्ग मिले उनमें यह मैं हूँ, इस प्रकारकी प्रतीति करता है। इस अज्ञानके कारण इस जीवमें ये नाना दशायें बनती हैं और यह दुःखी होता है।

व्यावहारिक धर्मकर्तव्यका प्रयोजन निर्मोहताका लाभ—प्रभुभजन, स्वाध्याय, सामायिक, वृद्धसेवा आदिक जितने भी उपाय किए जाते हैं वे सब एक मोहके छोड़नेके लिए किए जाते हैं। मेरे विकार दूर हों, मैं निर्विकार रह सकूं, सत्य प्रसन्नता तो निर्विकारतामें। किसी भी घटनाका प्रसंग सोचकर हम क्रोधमें बने रहें, गुस्सा आती रहे अथवा अभिमानमें आ जायें, कुछ भी मायाचार करें या किसी पदार्थ की तृष्णा लगे तो ऐसे कषाय भावमें रहकर क्या कोई प्रसन्नता लूटी जा सकती है? वहाँ निर्मलता नहीं, प्रसन्नता नहीं, एक तरहसे बुझा हुआसा बना रहता है। अज्ञानसे बढ़कर और विपत्ति क्या है, सम्यक्त्वसे बढ़कर और वैभव क्या है सम्यक्त्व प्राप्तिके लिये अहङ्कारको तो बिल्कुल त्यागना पड़ेगा, पर तत्त्वोंमें परभावोंमें यह मैं हूँ, यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मेरा है इस प्रकारका भाव रखकर या इस बाह्य कलासे मेरा बड़प्पन है, लोग हमें कुछ बड़ा मानलें इसमें हमारा शृंगार है, ये सारी बातें स्वप्नवत् असार हैं। ये सब कल्पनाएँ अहंकार हमसे विदा हो जायें तो हम उस सम्यक्त्वका आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। तो समझिये कि दुनियाके लिए हम कुछ नहीं हैं। यह भाव हममें भरा हुआ हो तो हममें आनन्द प्रकट होगा, मुक्तिका आनन्द हमें विदित होगा। और यह बात सभी लोग जब चाहें तब कर सकते हैं क्योंकि हमारी बात है, हमारा विचार है, हमारी दृष्टि हैं। अपने आपमें बिना हिले डुले, बिना दिखावट, बनावट, सजावटके स्वयं अपनी दृष्टिके द्वारा अपने आपमें अपनेको यों निरख सकते हैं। इस कारण कोई इसमें कठिनाई नहीं है और करनेका कार्य यही है।

स्वरूपाचरणमें ज्ञानका सदुपयोग - भैया ! ज्ञान पाया है तो उसका सदुपयोग यही है कि हम अपने आपको यथार्थ सहजस्वरूपमें निरखते रहें। मैं तो यह हूँ। जो कुछ व्यवहारमें करने योग्य काम है वे यदि करनेकी परिस्थितिमें हैं तो सहज होते रहेंगे। जिसके यह मौलिक सम्यग्ज्ञान है उस ज्ञानको तो बनाये रहनेका हमें यत्न करना चाहिए। मैं सबसे न्यारा केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। यह एक ऐसा भाव है कि प्रत्येक जुदी-जुदी परिस्थितियोंमें रहने वाले मनुष्य अपने क्षयोपशम और योग्यताके अनुसार इस भेद विज्ञानकी भावनाका लाभ लूट सकते हैं। कोई विशेष लाभ ले, कोई कम लाभ ले मगर कल्याणलाभ लेनेका उपाय भेदविज्ञान ही है। इस भेद विज्ञानके प्रतापसे ही आत्माका जो सहजस्वरूप है उसमें अभेद स्थित होता है। स्वरूपाचरण चरित्रका मूल साधन तो भेद विज्ञान है। भेदविज्ञान हो तो अपने स्वरूप का परिचय बने कि मैं इन सब पर पदार्थोंसे जुदा हूँ। अपने स्वरूपका परिचय बने तो स्वरूपमें स्थित रह सकते हैं और स्वरूपमें स्थित रहनेका नाम है स्वरूपाचरण। और मात्र स्वरूपाचरण ही एक जीवके कल्याणका साधन है।

स्वरूपाचरणके प्रयोग विना विश्रामकी व परमात्मभक्तिकी असिद्धि— स्वरूपाचरण बिना जीवको विश्राम मिल नहीं सकता। पर पदार्थोंमें हम अपना उपयोग फसाया करें, उनको ग्रहण करनेकी आशा बनाया करें तो उस आशामें हम कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकते, न हमें कभी अनिर्वचनीय आत्मीय आनन्द प्राप्त हो सकता है, और न हम यह भी ज्ञान कर सकते कि भगवानका स्वरूप क्या है। भगवानके स्वरूपकी तरह कुछ भी बात हमें अपने आपमें अनुभवमें न आये तो हम भगवानके स्वरूपका ज्ञान नहीं कर सकते। जो कुछ भी हम ज्ञान किया करते हैं सो अपने आपमें अनुभव करके ही किया करते हैं। और, फिर भगवानका स्वरूप जो ज्ञानस्वरूप है जो इन्द्रियसे अगोचर है, इन्द्रियको कितना ही फाड़े उससे नहीं जाना जाता, उसका सम्बन्ध तो सीधे मेरे आत्मासे है, अर्थात् मैं अपने ज्ञान और आनन्दकी कुछ झलक लूं किसी भी उपायमें तो उस झलकके मार्गसे हम यह पहिचान सकेंगे कि भगवानका यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूप है इस सब कल्याण लाभके लिए हमें यह चाहिए कि हम पदार्थका यथार्थ ज्ञान करें और भेद विज्ञान अपना दृढ़ बनायें।

शब्दाद्वैतकी अनुमानसे सिद्धिके साधनका अभाव—भैया ! तत्त्व तो यही ज्ञानानन्दस्वरूप अन्तस्तत्त्व है। शब्दब्रह्म मूल तत्त्व नहीं है। शब्दरचना तो शब्दवर्गणा जातिके पुद्गल स्कन्धोंकी परिणति है। जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल जातिमें साधारण धर्मरूप पाये जाने वाले तत्त्वकी संग्रहदृष्टिमें भी कुछ माना जाय तो उसे सद् ब्रह्म कह सकते हैं सो वह भी तिर्यक् सामान्यकी दृष्टिकी बात वह भी अखण्ड कोई सद् ब्रह्म नहीं है। शब्दमयताकी कोरी कल्पना ही है। विश्वके शब्दात्मकताकी सिद्धि न तो प्रत्यक्षसे हो सकती है और न अनुमानसे हो सकती है। शब्दब्रह्म साध्यकी सिद्धिका साधन न तो कोई कार्यरूप लिङ्ग है, न स्वभावरूप लिङ्ग है और न कारणरूप लिङ्ग है। कार्यकारणरूप साधन माननेसे शब्दब्रह्मकी अनित्यता व नानारूपताकी प्रसक्ति हो जायगी जो कि शब्दब्रह्मवादियोंको अनिष्ट है। स्वभाव-लिङ्ग स्वभाववान्के होनपर ही बन सकता सो स्वभाववान् शब्दब्रह्म ही असिद्ध है। धर्मीके असिद्ध होनेपर स्वभावभूत धर्म कैसे स्वतन्त्ररूपसे मान लिया जावे। यों विचार करनेपर अनुमानसे भी शब्दब्रह्मकी सिद्धि नहीं होती।

शब्दब्रह्मकी आगमसे भी असिद्धि—आगमसे भी शब्दब्रह्मकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि जो तुम्हारा आगम है जिसमें कि यह सब बखान किया गया हो कि सब कुछ यह ब्रह्म ही है अन्य कुछ नहीं इत्यादि वह आगम ब्रह्मसे भिन्न है या अभिन्न है। यदि भिन्न है तो लो यही द्वैत हो गया, आगम तो शब्दब्रह्मरूप है नहीं, फिर शब्दाद्वैत कहाँ रहा। यदि शब्दब्रह्मसे आगम अभिन्न है तो जैसे अभी शब्दब्रह्मकी असिद्धि है ऐसे ही आगमकी असिद्धि रही। सो विश्वकी शब्दात्मकताकीकी सिद्धि आगमसे भी नहीं हो सकती है।

व्यवसायात्मक ज्ञानके प्रमाणत्वकी संसिद्धि—यहाँ प्रकरण प्रमाणके स्वरूपका चल रहा है। प्रस्तुत बात यह है कि प्रमाणका स्वरूप "स्व और अपूर्व अर्थ का व्यवसायात्मक ज्ञान" बताया गया है। जिसमें क्षणिकवादियोंने तो यह कहा था कि ज्ञान तो प्रमाण है, किन्तु व्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाण नहीं है, वह तो मिथ्या प्रतिभास है, निर्विकल्प याने अव्यवसायात्मक स्वलक्षणमात्र ज्ञान प्रमाण है। इस मन्तव्यके निराकरणमें शब्दाद्वैतवादी यह कह रहे थे कि व्यवसायात्मक याने सविकल्प ज्ञान तो प्रमाण है, किन्तु शब्दानुविद्ध ही प्रत्यय (ज्ञान) होता है अतः सविकल्प ज्ञान का लक्षण शब्दानुविद्धता है और यों माननेपर मूलतत्त्व शब्दब्रह्म ही रहता है। यों शब्दाद्वैतवादमें शब्दानुविद्धतारूपमें ही व्यवसायात्मक प्रत्यय माना है। किन्तु यह मन्तव्य कोरी कल्पना है, युक्त नहीं है इसका सविस्तार वर्णन किया। यथार्थ बात यह ही है कि जो संशय, विपर्यय व अनध्यवसायरूप मिथ्याज्ञानका निवारण कर देता है ऐसा निर्णयात्मक ज्ञान ही प्रमाण है।

Version 1